वक्तव्य

योगसूत्र भगवान् पतंजलि ऋषि रो वणायो थको है। यो समझवा में घणो कठिन पड़े है। या देख महाराज साहब चतुरसिंहजी खड़ी बोली में प्रश्न और उत्तर रा रूप में एक टीका लिखी। मेवाड़ी भाषा में भी टीका लिखवारो विचार कर एक नानी (छोटी) टीका लिखी, जा अणी पोथी में दूजा नम्बर री है। बाद में भाष्यरा रूप में एक बड़ी लम्बी टीका लिखी और साथ ही केवल शब्दाँ रो अर्थ हीज व्हियो, असी नानी टीका भी लिखी, जा अठे तीजा, ने पे'ला नम्बर री है। पण, महाराज साहब ने अणाँ शूँ भी संतोष नी व्हियो, ने एक नवी टीका लिखवा रो आरम्भ की धी। जणी ने निर्वाण लाभ रे तीन दिन पे'लाँ तक लिखता रिया। परन्तु वा दूजा पाद रा छब्बीसमाँ सूत्र तक हीज लिखाय शकी।

महाराज साहब री पुस्तकाँ रो सपादन प० शोभालाल जी शास्त्री करता हा। परन्तु वणाँ रे स्वर्गवास व्हे'जावा रे बाद, वो काम म्हारे सिर पर आय पड्यो। मालकाँ रो लोकोपकारी काम समझ सा० आखा गृहस्थरो भार तथा अनेक विघ्न बाधा व्हेवा पर भी सेवा करवा रो विचार दृढ़ कर लीदो।

प्रथम तो मेवाड़ी भाषा रो व्याकरण हीज आज तक नी वण्यो। ई वास्ते कण्यो सही है, ने कण्यो खोटो है, अणी रो निश्चय हीज नी व्हे' सके। अणीरे सिवाय दूजो कोई साधन नी, के जणी शूँ कुछ सहायता मिल सके। भाषा ने स्थिर करवारे वास्ते, ने वर्णी रा यथार्थ उच्चारण रे वास्ते कतराई निशाण नवा बणावणा पड्या है। अणी में अभ्यास ना व्हेवा रा कारण शूँ कदाचित् घणा खराँ ने अयखाई जरूर आवेगा। पण सीदो पड़ जाय।

४—श्वास ने निकाळणो ने खेंचणो जो प्राण रो काम है, अणी शूं भी मन शुद्ध व्हे' ने ठे'रवा लाग जाय है। अणी ने प्राणायाम भी के' है। यो भी सहज ने स्वाभाविक उपाय, मन ने सुधार ने ठे'रावा रे लायक करवा रो है। अणी दो ही उपायाँ में सहजता है अर्थात् व्हे'ता ही सवा रे' ही रे' है। केवल शारण (तळाव शूं पाणी खेता मे ले जावारो धोरा) रो पाणी क्यारे वाळदेणो है; अर्थात् यूं नी, ने यूं, जाण लेणो, ने पछे तो स्वत. ही व्हेवा लाग जाय। क्यूंके स्वाभाविक ही स्वभाव है। वो स्वभाव पटकवा मे कई अवकाई ? अस्वाभाविक स्वभाव ही जदी अस्यो कर-लीदो, जदी व्हे'ती वात रो कई झगडो।

सू०—विषयवतो वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधिनी ॥३५॥

१—कोई अनोखी चीज दीखवा लाग जाय अणी शूँ मन ठे'र जाय है।

२—मायला अनोखा सुख दिखवा लाग जाय, तो भी मन एक कानी लागे है (अणी ने विषयवती प्रवृत्ति के' है।

३—मन रो निर्मळ व्हे'णो ज्यूं भक्ति रो उपयोगी है यूं ही मनरो ठे'रणो भी भक्ति रो उपयोगी है। निर्मळ व्हियां विना मन

---

(५) प्र०—हे भगवन् ! और भी कोई इस अभ्यास का (तर्ज) है या नहीं ?

उ०—हे प्रिय ! विषयों मे ही चित्त चञ्चल रहा करता है। जब

* श्री

महाराज साहब श्री चतुरसिंहजी रो संक्षिप्त परिचय ।

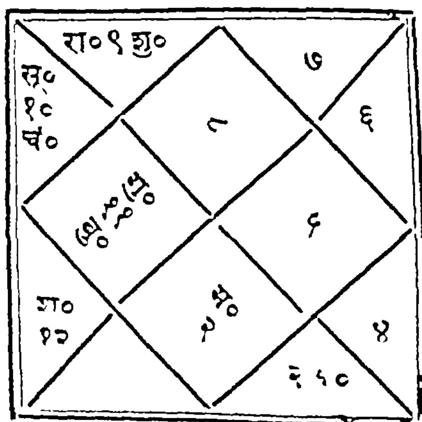
—*—

आप, कैलाशवासी महाराणा साहब श्री फतहसिंह जी रा बडा भाई करजाली महाराज साहब श्री सूरतसिंह जी रा चौथा कुँवर हा । आपरो जन्म विक्रम सम्वत् १९३६ माघ कृष्णा १४ सोमवार रे दिन व्हियो* ।

---

*श्रीगीताजी री मेवाडी भाषा री टीका री भूमिका में महाराज साहब री छप गई है। वर्तमान करजाली महाराज साहब श्री लक्ष्मणसिंह जी शूँ प्रार्थना कर असली जन्म-पत्री देखी, तो वणी में माघ कृष्णा १४ मिली । सज्जनाँ री जाणकारी रे वास्ते या पूरी जन्म कुण्डली ठीज दे देणी म्हूँ ठीक समझूँ हूँ ।

जन्म लग्नम् ७।२।४०।१२



स्वस्ति श्री विक्रम संवत् १९३६ शाके १८०१ प्रवत माने माघकृष्णा १४ चन्द्रे घटी २४। पल १५ श्रवणनक्षत्रे घटी ५५। पल २० इष्ट घटी ४५। पल १४ समये ९।२८।३४। २९ श्री सूर्ये जन्म०

रावर लिखता हीज रिया। विक्रम सवत् १९८६ अषाढ कृष्णा ९ दिन परभाते ९ वाज्यां आप योगियाँ री गति ने प्राप्त व्हिया।

निर्वाण लाभ रे कुछ दिन पे'ली आप एक भजन वणायो ो। जणी रा अन्तरा दो चरण ई है —

"चातुर चोर चाकरी रो पण, आखर ये अपणाय लियो।
जगदीश्वर जीवाय दियो, थे ही थारो काम कियो॥"

गिरिधरलाल शास्त्री



वंशपरंपरागत संस्काराँ रा प्रभाव शूँ आपरो झुकाव भक्ति री तरफ पे'लाँ शूँ ही हो। पण, विक्रमसंवत् १९६४ मे आपरी धर्मपत्नी जी रो, देहान्त व्हे' जावा शूँ आप ने पूरी निश्चिन्तता व्हे'गई।

योग सीखवारी इच्छा शूँ आप नर्मदा नदी पर प्रसिद्ध योगिराज कमल भारती जी रे पास पधार्‌या। परन्तु वठाँ आप ने ठा० सा० गुमानसिंह जी (बाठरडा) रे पास शूँ योगाभ्यास करवारी आज्ञा दीधी। वणाँ शूँ आपने राजराजेश्वर योग रो उपदेश मिल्यो।

वेदान्त, सांख्य, योग आदि दर्शन शास्त्राँ रो तत्व आप भली भाँति समझ लीधी ही, ने अणाँ रे सिवाय कुराण, बाइबल, जैन शास्त्र आदि मे पण पूरो दखल हो।

ज्यादातर आप सुखेर, ने नौवा गाँव मे विराजता हा। नौवा मे तो गाम रे बारणे मगरी रे मथारे एक कच्ची कुटी बणवाय लीधी ही। वणी मे विक्रम संवत १९७८ पौष शुक्ल ३ रविवार रे दिन आपने आत्मसाक्षात्कार व्हियो। वणीज मोका पर आप अन्तर्यामिनी, तुरी-अष्टक, ने अनुभव प्रकाश लिख्यो। आप सदा हँसमुख रता हा। शरीर पर रेजा री बुगलबंदी, ने माथापर रेजा रो फेंटा धारण करता हा।

[illegible] आपने अतरो त्यागे ही, के अणी पर आप चार [illegible] मे, ने एक [illegible] मे टीका लिख्या। छेला दिनाँ मे [illegible] अग्नि [illegible] ही, ने बैठवारी शक्ति भी नी री' ही। तो भी आप टीका निर्वाणलाभ रे तीन दिन पे'ली ताँई

बरावर लिखता हीज रिया। विक्रम संवत् १९८६ अषाढ़ कृष्णा ९ रे दिन परभाते ९ वाज्याँ आप योगियाँ री गति ने प्राप्त व्हिया।

निर्वाण लाभ रे कुछ दिन पे'ली आप एक भजन वणायो हो। जणी रा अन्तरा दो चरण ई है —

"चातुर चोर चाकरी रो पण, आखर थे अपणाय लियो।
जगदीश्वर जीवाय दियो, थें ही थारो काम कियो॥"

गिरिधरलाल शास्त्री





परिचय—

स्वर्गीय—महाराज साहब श्री चतुरसिंह जी

॥ श्रीः ॥

योगशास्त्र पे विचार

(भूमिका)

योग शब्द रो अर्थ जुड़वो व्हे' है, ज्यू-

"मन कू जोड़े ब्रह्म मे गुमना योग पिछाण।"

अणी रो विचार जणी शास्त्र मे व्हे' वो योगशास्त्र वाजे है। योग रा ग्रन्थ नरी ई तरे' रा व्हेवा पे भी पातञ्जल योगशास्त्र सब मे शिरोमणि है। क्यूंके अणी मे थोड़ा में ही सब तरे' रा योगाँ री मुख्य मुख्य वाताँ आय गई है। छै ही शास्त्रां में भी योगशास्त्र हीज मुख्य समझणो चावे। क्यूंके ई रो सबाँ ही आदर कीधो है।

पूर्व मीमांसा (कर्मशास्त्र)-वाळा के'वे के दानत शुद्ध राखणी, न्याय ने वैशेषिक (विचार शास्त्र)-वाळा के'वे के सब तत्वाँ रा छोटा अंश (परमाणु) रे' जावे है, ने वणाँ शूं ही पाछो संसार वणजावे, ने वी परमाणु है। ई री शाख योगी दे' है। क्यूंके वी योग्याँ ने हीज दिखे है। उत्तर मीमांसा (ब्रह्मशास्त्र) के'वे के निदिध्यासन (ब्रह्म में स्थिर व्हे' जाणो) ही मुख्य है, ने ई ने हीज योगी समाधि योग के'वे है, ने सांख्य* तो योगी रा विचार हीज है-अनुभव है।

---

*सांख्य (तत्व विचार) ने योग, तो एक हीज है ज्यू-"एक ही सांख्य ने योग दीखे जीरे वणी ज ने।" गीता—

यू सब शास्त्र, वेद, पुराण, मत (पथ) कणी-ने-कणी तरे' शूँ योग रो आदर करे हीज है, ने संसार में भी जीव ठकाणे राख्याँ विना कोई काम आछो नी व्हे' शके है। ई शूँ या वात शायत व्ही' के जो, मन ठकाणे जतरो वत्तो राखेगा, वतरी ही वणी री वत्ताई है। ज्यूं-'जो मन जीत्यो तो सब जग जीत्यो।'

"मन रे हार्याँ हार है मन रे जीत्याँ जीत। परब्रह्म ने पावणो मनरी ही परतीत ॥"

'बँध्यो गडक (मन) ना'र बरोबर ने बँध्यो ना'र (आत्मा) गंडक (मन) बरोबर।'

या हीज वात अठे योगशास्त्र में भी पाद १ सूत्र ३-४ में भी कही है। दूसरा मत ने शास्त्र, सब अन्दाज बाँधे, पण योगशास्त्र के' वे के यूं अठोठो ने पराधीन आँधा री नाईं लाकड़ी रे आधार पे क्यूं चालणो। जो है, तो देख क्यू नी लेणो। देख्याँ विना ही मान लेणो तो एक तरे' रो भे'म है, के ज्यो मोका पे धोखो देवेगा, विना देख्याँ मान बैठणो नी मानवा बरोबर है। यू तो नी व्हे' थीने भी मानणी आय जायगा। ई शूँ देखो ने मानो, नी दिखे, थीं ने मती मानो। रही दिखवा री वात सो तो सब ही जाणे है के स्वाद आँख शूँ नी दिखे तो भी स्वाद है, ने वो जीभ शूँ दिख है, परन्तु स्वाद है ई में फर्ड भे'म नी। क्यूके जीभ शूँ चोडे दिखे रियो है। यूँ ही कान शूँ रङ्ग नी दिखे, तो भी आँख शूँ चोड़े दिख रियो है। यूँ ही एक वस्तु दूसरी वस्तु ज्यू नी दिखे, परन्तु दिखवा में कोई सन्देह नी। अणी तरे' शूँ या ई शूँ भी चोड़े देखलेणो, यो योग रो सिद्धान्त है, ने योग स्पष्ट के वे के देखो ने मानो, स्पष्ट (शागे) देखो, निस्सन्देह देखो, या योग री

शाफ्ला मनख मानवा ने त्यार व्हे'जाता तो धर्म रा नाम शूँ जो आज अतरा भयङ्कर अधर्म फेल रिया है, वणा रो नाम भी नी रे'तो। राम! राम!! धर्म रे वास्ते मनख ने मनख मारे राक्षस री नाँई। एक मतवाळा पे दूजो मतवाळा कटक्याँ करे। ठग, पाखडी, पे मनख विश्वास करे, मन में शान्ति नी आवे, भ्रान्ति नी मटे, वो भी धर्म वाजे, जदी अधर्म रे माथे कई शींगड़ा व्हे'गा।

योग के'रियो है, देखो ने मानो। नी दिखे तो देखवा रो उपाय करो। जरूर दिखेगा। साफ़ दिखेगा। है, तो दिखेगा हीज। ई में भे'म भटका री कई वात नी है। उपाय भी अस्यो नी के 'चट्टी आँगळा रा नख शूँ वेंत भरयो खाडो खोदे ने भाँपण्याँ शूँ भराव निकाळे तो वेंत्यो मनख निकळे।' व्हे'ती वात है-काम में आय री' है-उरा ही वात है, असम्भव नी है। पण कराँ कई! टोकराँ वजावताँ वजावताँ हाथ ठठ व्हे'गया वाँग देताँ देताँ गळा पट्गयो, तीरथाँ में फरता फरताँ छाला पड़ गया, ने भूखाँ मरताँ मरताँ शरीर शूख गयो, अवे कई कराँ, जीं शूँ दिखे। देखवारे वास्ते करो दिखवारे वास्ते मती करो। परन, शास्त्र में तो कियो है सो कीधो, तो भी कई नी व्हियो, जदी अवे योगशास्त्र हीज स्याँचो है, यो म्हाँने भरोशो कूँकर आवे?

शास्त्र वाँचताँ वाँचताँ तो आँखाँ परी गई, शुणताँ शुणताँ कानाँ रा कोवरवा फूटगया, म्हाँ ने तो अवे शास्त्र पे भी भरोशो कोय नी। म्हाँ ने तो नास्तिकमत दाय लागो-खूब खावणो, पीवणो, मोजमजा उड़ावणो, मरयाँ पछे री कणी देखी है। अणी में योग री कई राय है? योग री तो या हीज एक अटल राय है, के कणी भी वात री ईरवा पे'ली राय कायम मती करो। यूँ भी मती के'वो

के कोय नी' ने यूँ भी मती के'वो के है। ज्यूँ-'नाई नाई केश कतराक के कोय नी' ने यूँ भी मती के'वो के है। ज्यूँ-'नाई नाई केश कतराक व्हे'गा ? के व्हे'गा शो आगे आवेगा योग के' रियो है-आगे दधो, एडी री जगा' अगोठो मती आवा दो। पण बराबर आगे आगे वधता जावो। हरण री नाई फाल मत चूको। साँच री आडी वधोगा तो साँच ने अवस्य धू'रे धडे पावोगा। पण साँच री पे'चाण कूँकर पडे गा। वाळकपणा में गुलीडंड्या हीज में साँच ने तृप्ति दिखती ही, ने जवानी में और वात सही जची, ने अवे और ही साँच दिखे है। यूँ ही एक दिन या भी झूठी निकल जायगा। अठे तो 'जणी रा व्याव वणी रा गीत,' वाळी वात दिग री' है। माथो दूखे ने तो जाणे संसार में दुख ही दुख है, ने पाछा आछा व्हिया, ने जाणे सुख ही सुख है। पण असल में है, फर्द जणी री खबर नी।

योग के'वे के साच वो हीज है के—

(झूठ रो होवणो नी ने साच रो मटणो नहीं। अणा रो नगणो कीधो दोयां रो ब्रह्म ज्ञानियां॥ ज्यो सबी' जवी में व्याप्यो जाण यो हीज नी मटे। वणी अखूट रो नाश कणी शू भी व्हे शके॥) जणी लाभ वचे वत्तो और लाभ गणे नहीं। जणी में टे'र ने म्होटा दुःख शूं भी डगे नहीं। योग नाम अणी रो यो वियोग दुख रो करे। जरूर साधणो योग नाम नी बदरावणो।

शतरंज में जणी खिलाडी ने पांच छै चालां अगाडी सूझ जाय, वणी ने नवो शीखदड के'वे के बस मात है। परत मात ने यां हीज गुद व्हे' ग्यो है। अवे वीं ने अगाऊ दिखी सो कणी शू दिखी ने वणी ने नी दिखी सो कणी शू नी-दिखी।

ई शू जाणी जाय है, के आँख, नाक, चामड़ी, कान, जीभ, शिवाय भी जाणवा री इन्द्रियाँ है। कणी ने साँचो सपनो आवे, वणी रो दिखवो कणी शू व्हे'? यू अणी दिखवा शिवाय भी नरोई दिखवो है, ने ज्यू भूखा ने कवा कवा में तृप्ति आवती जाय, ज्यू योगी ने भी विश्वास आवतो जाय, ने आगे वधतो जाय। पण कतराई वच्चे भी रुक जाय है।

योग के वे केई भी झूठी वाता है। वणी ने नरी आगे री त्राल दिख री'है। वो पूरा साँच पे लेजाय रियो है। ई पड़तला रा हीज काम है, के टोकर वजावा में हीज पींड्या विताय दीधी, ने वाँग देवा में हीज पूरा व्हे' गया, ने कोई के'वे–"ऊठो! आगे वधो, तो लड़वाने त्यार व्हेवे। मनख आलश रो पक्ष करे। योग के वे, गेला में मती वैठ–आगे वध" ! मनख के'वे "वस, राज मिलयो ने कृतकृत्य व्हिया।" कोई के'वे–'स्त्री मली ने जनम सुधर्यो। कोई वेटो, कोई धन, ने कोई जश। कोई कठे ही रुक जावे, कोई कठे ही।

योग के वे, के आगे घणो विधान है। यो तो वो गियो, मान वियो। सोखता पोखता रातें ऊट रो, घोड़ा रो शूखो हाडक्यो दे' री' है, ने हीरो के' री' है ने दिख रियो है, पण परभात खवर पडेगा सोखता सुखाय देगा। मनख के'वे प्रत्यक्ष मानू हू। योग के वे यो प्रत्यक्ष नी है, सही नी है, थोडो आगे वध, अवार पक्की खुलेगा, फेर आगे वध, ई री भी पक्की खुलेगा। मे'नत नी आराम है, अभ्यास नी व्हेवा शू मे'नत ज्यू दिखे है।

पे'ली ज्यो जे'र ज्यू लागे लागे अमृत ज्यू पड़े। आँटरी शुद्ध बुद्धी रो वो सुख सतोगुणी।—

खावो, पीवो, मजा उड़ावो, सो तो ठीक, पण ई मजा थांने नी उडाय दे । 'रांड़ बिहयां केड़े मत आई कई काम री । से'ज है नजीक है, कुछ ध्यान दो, थाँ शू कई छोडावाँ नी । परन्त–

"अठे वठे कठे ही भी वणी रो नाश होय नी । भलाई करने भी ई बुराई पाय कोइ नी ।"

बुरी आदत छोड दो ! सही वात ने शोधवा में आँपणाँ अनुभव ने वधावा ने त्यार व्हे' जावो, नी तो ई घोडा ने ई चौगान ।

ज्या साँच, पाछी भूठ नी व्हे' वा हीज साँच है, ने ज्या कोई थोड़ी देर सही दिखे ने पाछी भूठी दिख जाय, वा तो भूठ हीज है । ज्यू

"बारला सुख सारा ही दुखाँ री हीज खान है । वणे ने घगटे यां में ध्यानवान रमे नहीं ।"

जदी आंपां सांच सही वात जाणा वणी ने ही मानणी चावा, न वणा शूं ही राजी व्हां । परत पाछी वा हीज भूठी निकळा जाय, जदी फेर एक दूसरी ने सांची मानलां, पण आखर मे सब भूठ दिख जावे, जदी जीव घबराय जाय । क्यूंके–

"भूट ने हो वणो नी' ने सांच रो मटणो नहीं । अणाँ रा नरणो कीधो दोयाँ रो तत्वज्ञानियाँ ।"

यूं ही जदी सांच ने आपणो मन शोध रियो है, तो आंपां ने चावे के अस्या सांच रो पत्तो लगावाँ, के ज्या कधी भूठी व्हे' होज नी सके ।

ज्यू कोई वळावो साथ मे रे'ने ठकाणे पुगाय दे, यूं ही योग भी वणी साँच तक पुगाय देवा रो वळावो है। आज योग रे वास्ते मनख भटकरिया है, कोई।

"दोई खोई रे जोगडा मुद्रा ने आदेश। नहीं कराया कातरया, नहीं कराया केश।"

ज्यू-'घर रा रिया ने घाट रा, वी वेंडो रा वाटका री नांई व्हे' रिया है।' कोई रोगी ने जोगी माने है, तो कोई ढोंगी ने।

यू नराई पाखड चाल गिया, ने अज्ञान शू लोग आँधा व्हे' रिया है। कतराई योग रा एक मुकाम पे पूग ने ही निरांत कर ने बेठ गया, तो कतराही योग रो नाम शुणता ही भडके है। योग-शास्त्र रे रे'ताँ यू भटका खाणो शूभता सूरदास व्हे'णां है।

अणी योग शास्त्र रो वेदव्यासजी महाराज अर्थ समझायो। घणी ने देख ने ई ने मेवाड री बोली में क रवा रो मन व्हे' गयो। मेवाड आखी ही तीरथ ज्यू है, पे'ली अठे वडा वड़ा योगी व्हे' गया है। ज्यू-(शृङ्गीऋषि) सिंगीरिप जी, भिंडीरिषि जी, विभाडक रिषि, (मांडव्य) माँडव, आदि नरा ही जणां। मेवाड में जठी देखो वठी हीं, मन ने शान्ति मले, वशी जगा दिखे। जाणे, मेवाड कई, ऋपियाँ रो हीज आश्रय है। अठा रा राणा हम्मीर, कुम्भा, समरसी, प्रतापसिंह जी, राजसिंह जी, जस्या राजा और मीरांमाता उड्याराणी, ने कृष्णाकुमारी बाई जशी पुत्रियाँ व्ही' है, घणी री ज्यादा के' वा शू, के'वा री वात छेटी पड जायगा। परत महाराणा राजसिंहजी औरङ्गजेब पाखडी रे जो कागद लिख्यो हो ने देखवा शू चोड़े दिखे है, के अठा रा राजा भी योगशास्त्र रा कतरा आछा जाणकार व्हियाहै।

अठे कणी मत शूं खार नी है, श्रीनाथजी री जशी भावभक्ति है वशी ही श्रीएकलिङ्गजी रा है, वशी ही श्रीऋषभदेवजी री है, ने जश्यो मुसळमान फकीर रो आदर है, तो वश्यो ही जैनी रो, ने सन्यासी रो है, मुसळमानाँ शूं लडाइ व्ही तो भी वणाँ रा धर्म पे कठे ही खार ना' काढ्यो। मूर्खता शूं चावे मुसळमानाँ अणी वात पे ध्यान नी दीधो, पण अठे एक ही वात पे ध्यान रियो, के धर्म परमात्मा रो है। वणी रा नरा ही वारणा है। जो कोई दगाडा मूर्ख वणी में जावावाळा ने रोके, तो वणी ने दण्ड देणो भी एक धर्म री रक्षा करणो है, सबाँ री तो खास कर ने यो सिद्धान्त हीज व्हे'णो चावे।

अश्या सनराँ ने जणी मेवाड जनम दीधो, अशी मेवाड री बोली में योगदर्शन जरूर व्हे'णो चावे, ने जतरे कोई महात्मा ई में दर्शन नी के'वे उतरे म्हारी कालीगेली बुद्धि माफक ही कईक लिखणो अनुचित ना है।

यूं तो सब वेद, पुराण, शास्त्र, मत, पन्थ, अणी री हीज टीका है। क्यूँ के ई सब अनुभव री नींव पे है, ने अनुभव ज्यो योगी रो हीज व्हे' है, ने विना अनुभव रो तो कोई भी काम सही नी व्हे। ईंज कियो है, के 'योग रो सार, ने संसार रो सार है।'

योग सब ही धर्मों रो राजा है। अणी रो ही हुकम अनेक [illegible] री बोली में भाषान्तर करे, ने फैलायो गयो है। भाषान्तर करवावाळा योग री भाषा समझता हा, ने वणाँ, लोगाँ ने समझावा भी लागा, पण आळश थोड़ा ने हीज समझया दीधा। समझ्या वी एक निश्चय बाकी रा बे'क गिया।

ज्यूं—

"ईसा महमद एक सब, देखो सहित विवेक।
कच्चे कच्चे एक है, पक्के पक्के एक।"

"सो सयाण एक मत, एक अयाण अनेक मत।"

चावे कुराण व्हो', चावे पुराण, अंजील, सूत्र, वाणी, वेद, वहिश्ता सब महाराजाँ, योग री आज्ञा रा आंपणी आंपणी बोली में अनुवाद कीधा है। अणी'ज वास्ते योग रो कणी भी मत (पंथ) शूं विरोध नी है। ई सबाँ री भाषा समझे है। पण अणारी भाषा नी' समझे, वी आपस में लडे है, ने झगडा कर रिया है।

महाराज! योग सबा ने के रियो है,—अरे थें आळस रो कियो मान, क्यूं लडरिया हो। म्हूं साफ साफ चोडे के'रियो हूं के मन ने काबू में करो। थें उलटा आळस रे वे कावा में आय, मन रा काबू म व्ह रिया हो। देखो म्हारा हुकम रा भाषान्तर, घटे' लिख्यो है के मनरा काबू मे व्हो'ज्यो। थें झूठो पाखंड कर रिया हो। म्ह शास्त्र रा हुकम पे चाल रिया हाँ, ने चालो हो आळस रा हुकम पर। म्हां ईंने काबू में करवा री तर्जां, सो अनंत प्रकार री है। पण थें खाली तर्ज ही पकड़ रिया हो, पण मर्ज ने छोड रिया हो। तर्ज रो मर्ज पकड़ो, वारणे मांय ने आनन्द ही आनन्द छाय जायगा। घणी स्पष्ट आज्ञा है, ई ने भूल जावा शूँ ईज नास्तिकता फैली। ज्यूं

"दिन आथ्यो थाको बळद, पियो न प्यारो एक।
घच्च म पाणी फूटग्यो हियो फूट भाट देख।"

आज मेवाडी भाषा में वणाँ योग मा'राज री आज्ञा रो अनुवाद करवारो विचार कीधो है। अनुवादक में अतरी योग्यता

नी है के योग महाराज री'ज आज्ञा रो अनुवाद करे, पण अनुवाद रो भी अनुवाद करणो मुशकिल व्है'रियो है, तो भी ज्यूँ टूठरी चतारो महा-सुन्दर तसवीर उतारे यूँ'ही यो म्हारो काम है सो सज्जन सुधार लेगा ने क्षमा करेगा।

योग साधना



श्री काका जी साहब (गुमानसिंह जी बाठरड़ा वाळा) रो यो सिद्धान्त है, के कर्म तीन तरे 'रा व्है' है,-शुक्ल, कृष्ण, मिश्र, ज्यां में कृष्ण ने मिश्र शूं त्यागणा, ने मिश्र ने शुक्ल शूं त्यागणा और ई शुक्ल भी योग शूँ छूटणा चावे, या ही ज बात गीता जी में "अनिष्टमिष्टं मिश्रञ्च" शूं कही है। शुक्ल कर्म योगाग रो साधन ही है। अणी शूं योग-साधन दृढ व्हे' ने करणो। ज्यां में या यागादी के कर्म तो अवश्य करणा चावे। ज्ञानी होय्या अज्ञानी, या बात-"पावनानि मनीषिणाम्" आदि शूं श्री भगवान जोर दे ने हुकम कीधो है। क्यूं के अणां विनां गति बन्द व्है ने योगी निरुपयोगी व्हे' ने साधारण मात्र शूं भी गिर जा है। इणी ज शूं महात्मा अणां बातां में अत रो जोर देवे। क्यूं के सिद्धान्त री उननी साधना है।

(प्राणायाम रहस्य)



श्वास प्रश्वास शूं इन्द्रिया चेने अर्थात् इन्द्रियां ने ज्ञान व्हेवे ने इन्द्रियों ने ज्ञान व्हेवा शूं मन वरणे। क्यूं के इन्द्रियाँ रो झट झट गरणेटो खावा रो नाम हीज मन है। मन शूं आखो ससार वणे अर्थात् निश्चय व्हेवे, निश्चय शूं ही ससार है। पाछो अँवळो चालवा शूं यो मिटे। निश्चय मन मे, मन इन्द्रियाँ मे ने इन्द्रियाँ शाँस में, शाँस प्रकृति मे मिले जदी शाँस वा इन्द्रियाँ वा निश्चय आदि कई भी निखाळश दीख जाय। जदी'ज सब छूट मुक्ति व्हे' जाय है. ने ई रो उपाय, शाँस में निश्चय शूं मन ने मिलावणो है। यो, प्राणायाम करवा शूं व्हे' है। प्राणायाम री विधि योगदर्शन वा भाष्य में देखणी।



॥ अथ योग सूत्र ॥

॥ दोहा ॥

नमो अलख गुरु प्रगट री, दया दृष्टि विन अन्त।
घणा कलप रो उलट ज्यां, करे पलक रो पंथ ॥१॥

सूत्र—अथ योगाऽनुशासनम् ॥१॥

१—अथ श्री योग शास्त्र प्रारम्भ

२—या अखण्ड महा सुख री शमझ प्रारंभ व्हे' है।

३—ई रो खुलाशो यू भी व्हे' है के परमात्मा शूँ मिलवा री रीत रो नाम योग शास्त्र है, वणी रो आरंभ करा हाँ अर्थात परमात्मा शूँ घूँकर मिलणो या वात अणी शास्त्र में बताई जायगा। 'योगानुशासन' शब्द जो संस्कृत मे है, वणी रो अर्थ व्हे' है मिलवा री पतवाणी थकी वात अर्थात शुणी शुणाई नी, पण धूरे धर देख ने कही जाय है अर्थात परमात्मा शूँ मिलवारी सही रीत देखी थकी कही' जाय है। अठे एक वात याद राखवा री है के

५—प्रश्न—हे गुरो! अखण्ड सुख कैसे मिले, और सब दुःख कैसे मिटे?

उत्तर—हे वत्स! अब योगशास्त्र प्रारंभ किया जाता है।

नोट—(यह परमात्मा की योगशास्त्र है [illegible] र करे प्रकार से हो

परमात्मा शूँ मिलवा री रीत हीज मलवो नी' है। दूज्यूँ तो रीती रीत हीज है। कोई ज्यो यूँ के'वे के कोई मतलब री रीत कहो जी रो फायदो व्हे'। परमात्मा रे मिलवा री रीत ने कई-करा। तो अठे या यात राखणी चावे के दु ख ने बिलकुल मिटावणो ने सदा सुख पावणो हीज फायदो है। सो फायदो परमात्मा शूँ मिल्या विना पूरो नी मिले। क्यूँ के दु ख मिटे ने पाछो व्हे' जाय है। सुख व्हे' ने पाछो मट जाय है। ई रे लिये परमात्मा शूँ मिलवो हीज एक अश्यो है के दु ख कदी व्हे' ही नी, ने सुख कदी मिटे ही नी। ई पे गीता-जी मे हुकम कीधो है के

"म्हारी तो बुद्धि या हीज, योग री जाण अर्जुण।
चक्करां री नरी बुध्या शाखा डाळ्या अनन्त री।
जणी लाभ वचे वत्तो और लाभ गणे नहीं।
जणी मे ठे'र ने म्होटा दु ख शूँ भी डगे नहीं॥
योग नाम अणी रो यो वियोग दु ख रो करे॥"

पण गीता तो नरी त'रे री है। शास्त्र, पुराण, मत, पंथां रो ना पार ही नी। हाल तो योग रा नाम शूं ही नरी त'रे रा योग वाजे है। जणी जणी रीत मही, वणी पे के'वे है।

४—योगी सब ही है, या बात है हीज, तो भी कोई नी जणे अणी वास्ते साची वात ने जणाय देवा रे वास्ते अणी योग शास्त्र रो आरम्भ है। ने शास्त्र रो मतलब

योग नाम होता है। इस बात को समझना चाहे, उसे योग शास्त्र समझ लेना चाहिये। इसी से सब दु ख मिट कर सब सुख मिलता है।

५

ही यो हीज है। नी' व्हे' सो के'वे तो भूठो ने व्हे' मो के'णो पुनरुक्ती (व्यर्थ) व्हे' जाय। अणी वास्ते है, तो खरी, पण वणी ने ऊँधो जाण लीधो—विपर्यय कर लीधो मो पाछो है, ज्यूँ जणाय देणो ही शास्त्र है। अणी वास्ते यो शासन हीज नी' है पण अनुशासन है। जणी रो हीज उपदेश है अर्थात विपर्यय ने समझावणो है। अणी'ज वास्ते या सवा री थापोती है। योग रो अर्थ है–दुखा शूँ अलग (न्यारा) व्हे' जाणो। यो ही शान्ति रो अर्थ है, ने यो तो स्वाभाविक ही सदा सर्वदा स्वधर्म है हीज, या वात ही की' है। सहजावस्था योग रो दूसरो नाम है। अणी मे जत री वणावट वत री ही छेटी।

सू०—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥२॥

१—योग चित्त री वृत्याँ रो रुकवो है।

२—मन री तरगा ठे'र जाणो ही महासुख है। अणी ने ही योग के' है, ने मन री तरगा ने चित्तवृत्तियो के' है।

३—योग चित्त री वृत्यो रो रुकवो है। सुरता रो थिर व्हे' जाणो हीज योग है। सुरता जगा' जगा भटकती फिरे सो ही वणी री वृत्तियो वाजे है। ने वी ठे'र जाय यो ही योग वाजे है। अणी विना रा मत (प०) कोई नी' है अर्थात सुरता ठिकाणे नी राखणी

५-प्र०– योग किस को कहते है ?

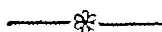
या कोई मत नी' के'। अणी बात पे सबाँ ने ओशान राखणी चावे। ज्यूँ

> “बिन आँख्यो थाका बळद पियो न क्यारो एक।
> पाणी बच मे फूटियो हिया फूट भटदे रव”॥

या ही बात कहे' जाय है। अणी सुरता ने ही सांख्य प्रकृति वा प्रधान भी के' है ज्यूँ राजा रे प्रधान कहे' सो राजा री नजर नीचे काम करे है यूँ ही या सुरता भी चैतन्य राजा री नजर आगे काम करे है। अणी रा तीन गुण है—सतोगुण (बुद्धि, ज्ञान), रजोगुण (मन) ने तमोगुण। यो मन शरीर सो जड धम। **“ज्ञान, अज्ञान, करणो, अणी रे गुण तीन ही।”** अणी रो स्वभाव है के जतरे आत्मज्ञान नी होवे' जतरे नी रुकणो। अर्थात सुरता आत्म ज्ञान विना नी रुके है, या वात याद राखणी ने ईं रो रुकणो ही योग है। सुरता मे [illegible] सतोगुण है जणी रा या दूसरा दो ही (तम ने रजोगुण) ने

के'है अर्थात सुरता रो चेतन री कानी व्हे'णो योग है। कोई चित्तवृत्ति से शून्य व्हे'णो योग नी मान ले ई शूँ के' है के—

४–चित्त, बुद्धि रो नाम है, ने वणी रा निश्चय रा भेदाँ ने चित्तवृत्ति के' है। वी मुख्य पांच है, ने वणा रा आठ ने आठ रा साठ ने साठ मे विपर्यय रा बासठ भेद व्हिया। ने वणा रा अनन्त भेद होज यो 'बन्ध' बाजे है। यूँ ही अविपर्यय रा भी बासठ भेद, वणा विपर्यय शूँ उलटा व्हिया। वणा मे तम (गुण) रा अविपर्यय रो व्हे' जाणो ही निर्बीज योग असम्प्रज्ञात समाधि बाजे है। बाकी रा च्यारों रो अविपर्यय व्हे'णो सबीज सम्प्रज्ञात योग बाजे है। मतलब–अविपर्यय ही योग है, ने विपर्यय ही अयोग है। ई ने ही ज्ञान, अज्ञान, विद्या, अविद्या आदि नामाँ शूँ ओळखे है। या वात आगे फेर स्पष्ट आवेगा।



सू०—तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥३॥

१—जदी देखवावाळो आपणा स्वरूप मे ठे'र जावे है।

२—मन री तरंगा ठे'र जावे, जदी यो देखवावळो अणा शूँ न्यारो के' व्यूँ के' जाय है। (ई ने ही स्वरूपावस्थान आपणा रूप मे ठे'र जाणो के' है, ने यो ही महासुख है)।

५—प्र० चित्त की वृत्तियों के निरोध होने पर क्यों अखण्ड सुख मिलता है ?

३—पण चैतन्य कई है ? जणी पे के'है के (द्रष्टा) देखवावाळो ही चैतन्य है, ने अणी री कानी सुरता आई, ने अणी रो आपणा रूप मे ठे'रणो व्हे'जाय है अर्थात् सुरता रे ठे'र वा सूँ सुरता ने देखवावाळो आपणा रूप मे ठे'र जाय है। ई शू [illegible] जाय है, के योग रो मार्ग सूझता रो है। पण सुरता अणी [illegible] री कानी आवे कूकर ? यो देखवा वाळो, के' तो [illegible] सुरता अणी री कानी आवणी'। पण, यो देखवावाळो, तो [illegible] सुरता ने भी [illegible] हाँ, जदी यणी पे सुरता गई सो वो भी [illegible] सुरता ने देखवावाळो कों' हाँ या भी जाणे [illegible]। थी जंगल मे सुरता रे मथा रे एक ट्रंक्यारे (आदमी रे) [illegible] के यो म्हने देखग्यो है, ई रो मायरो कूण ? कई, कोई [illegible] नी [illegible] कई नी कियो ? कियो तो खरी, जदी [illegible] चैतन्य रूप है, के (कोई नी शुणे तो भी शुणे) थाँ किया [illegible] ने भी [illegible]। ने यो ही योग अर्थात् समाधि है। यो ही [illegible] अवस्था है। [illegible], कई नी दीखे यणी ने समाधि [illegible] यो कई नी [illegible] भी है। क्यूँके रंग रूप कई [illegible] है, या ही अणी री स्वरूप मे स्थिति है। या ही [illegible] निरता [illegible] है। देखवावाळा या के'तो ही निरता [illegible] है, या ही अन्तर्वृत्ति है। सुरता हीन निरता व्हे' गई

"[illegible] सुरता, आगन पति घर आयो।"

[illegible] है के सब रो सार योग शास्त्र है, ने योग

शास्त्र रो सार प्रथम पाद है, ने प्रथम पाद रो भी सार च्यार सूत्र है, च्यार सूत्र रो भी सार तीसरो सूत्र है, ने तीसरा सूत्र रो सार दो अक्षर है, ने दो अक्षर रो सार एक अक्षर है।

८-अमल में निश्चय मात्र रो साक्षीपणो ही पुरुष मे द्रष्टापणो है। यो द्रष्टापणो ही अणो रो आपरूप है। अणी सिवाय रा सब ही रूप वृत्तिया रा है। द्रष्टापणो तो सदा एक रस अविनाशी है हीज, ने निश्चयपणो भी है, तो अविनाशी, पण गुणा रा स्वभाव शूं वणी रा मुख्य तीन हीज भेद व्हे' है–वणी में पूरो सात्विकपणो, रजमिश्रितसात्विकपणो, ने तममिश्रितसात्विकपणो ई तीन ही गुणाँ रा तीन भेद व्हे' है। क्यूँके निखाळश तो गुण एकलो रे'वे ही नी है, पण ओछा वत्ता माप शूं निखाळश वा मिश्रित किया है। पूरो सात्विकपणो ही योग कियो है। वणी वगत जाणे द्रष्टा स्वरूप में ठेरयो व्हे' ज्यूँ दीख जाय है। यो ही प्रकृति रो दीख जाणो है, ने निर्बीज समाधि है। दूज्यूँ वास्तव में तो पररूप मे अवस्थान व्हे' ही नी शके है, ने बुद्धि रो दीखजाणो सविकल्प, ने तन्मात्रा रो दीखणो विकल्प है। पण एक दाण भी ऊँचो दर्जो आयाँ केडे नीचो दीखणो पतन नी व्हे' है।

नोट—देखने वाले को अपना ज्ञान हो जाना ही योग है। योग, निरोध, स्वरूपावस्थान, समाधि ये एक ही अर्थ के सूचक है।

ऋतभरा कशी ऊँची हालत व्हे'ती व्हे'गा, वठे कई सुख व्हे'गा, देखाँ भागवतजी में वठा रो हाल व्हे'गा, वा वेद पुराण कणी पोथी में नी तो कणी महात्मा ने पूछा, जी अणी वात ने जाणता व्हे', वणाँ शू वाकब व्हे'जावा। सूत्रकार आज्ञा करे के यूँ नी'। चावे जतरो शुणलो, ने अदाज बाँधलो, पण या तो न्यारी'ज है, ने सब शू अधिक है, ने अनोखी है। अणी शूँ ई ने प्रत्यत्त करो नहीं ज जाण शकोगा। विना अनुभव तो ससारी वात री भी अदाज नी बधे, जदी सब शूँ अधिक, ने अनोखी यू कूँकर जणाय शके। जो थे म्हारा के'वा माफिक आय रिया हो तो समझ रिया हो, ने नी तो भूल्या जठा शू ही गणो, कई अटकाव है, शूधी वात, ने महालाभ है। कोडी कोडी रे वास्ते विचार करो तो थोड़ो थोड़ो अणी री भी विचार करो, आप शू आप वधता जाओगा। विचार री तरज तो म्हे बताय दिया हा। अबे थाणे ही हाथे है। आगा री चर री वस्तु थे ही भूलो, ने बतावा पे भी नी हेरो, थोड़ो दे अणी ने भी दुखावो तो थाँणी मुरजी, म्हूँतो बरावर अगट प्रकाश ले'ने कहा हूँ, मन व्हे' जदी ही हेर लो, जाणे यूं भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा कर दिया है।

२—यदूके ठसगा रा अठोटा, शुणो वातां, अणी साची ध्यान सम्म र नरह प्रग व्हा नी शके। पे'ली तो मनग र विचारना री रीत होन भूल शू गुमवान व्हे'है, ने व जी में फेर एक पे एक वधती जाय है। अबे अ माग में होयगो असम्भव व्हे' ज्यूं अणी ऋतम्भरा प्रकाश विना अभागी होन है, ने "अंधेनैव नीयमाना

(नं ३) सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

फैलाव अणा च्यार सूत्रॉ री हीज फैलाव है, ने मुख्य योग रो लक्षण तो दूसरा सूत्र में आय गयो है. सो ध्यान में रे'णो चावे।

४—यूँ जतरे पूरी सात्त्विकता अर्थात् अविनश्यय योग नी व्हे' वतरे जाणे निश्चय रा भेदाँ सरीखो व्हे'। दूज्यूँ द्रष्टा व्हे' जाय है। यो ही अयोग वाजे है, ने अणा निश्चय रा भेदां रो नाम ही वृत्ति यों है। निश्चय रा नाम चित्त (बुद्धि) है। यद्यपि प्रकृति ने बुद्धि भी निश्चय रा भेद ज्यूँ जणाय है, पण प्रकृति तो निश्चय रो कारण, ने बुद्धि भेदाँ रो कारण है। जदी वृत्तिसारूप्य ही योग नी है, तो वृत्ति वैरूप्य ही योग व्हियो, यो ही निरोध वाजे है। वृत्ति सारूप्य, ने वैरूप्य दोई वृत्तियाँ हीज है। याँ रो हीज नाम अविद्या ने विद्या है। या योग चतुसूत्री है। अणी में सम्पूर्ण सार आय गियो। अबे दूजो सब अणी'ज रो फैलाव है। योग तो सहज ही है। अबे वणावट (वृत्तिया) रो विचार कीधो जाय है। क्यूँ के अणा रो जाणणो ही योग है।

नोट—कुल वृत्तियों से अलग ही वृत्तियों का द्रष्टा है यही योग और किसी वृत्ति से मिला (वृत्तिरूप) द्रष्टा है, यही अयोगवृत्ति का आकार है।

———

"जगी लाभ वचे वत्तो, और लाभ गणे नही।
जणी ने पाय ने म्होटा, दुख शूँ भी डगे नहीं॥"

श्रीगीताजी

री हालत व्हे'गई है। कई सूर्यनारायण ने यो विचार व्हे'के यानी व्हे'जो अंधारा मे ठाकर खाय जाऊ,। अणी पे एक वात है, वे एक परणी छोरी वगी री शानी री कुआरीछोरियाँ शूँ वणी र अनुभव री वाताँ कर री'ही। बिचारथ्या वी भी आपणी बुद्धि माफिक वणाँ वाताँ ने समझवा री कोशीश कर री' ही। वण ने तो या भी के' दीनी के, म्हारे एक छोरा भी व्हे'गयो हो, प यो प्यारी रात रो हियो, वणी वगत म्हारी नणद जागती ह म्हूँ तो शूती ही सो छोरो कूँकर व्हे' है, यो तो नणद ने पूछ शूँ खबर पड़ेगा। जदी एक अनुभवी लुगाई बोली के बेटी ओ त, बात ठीक है, पण नींद मे छोरा नी जणाय है, ने पूछवा ना, पण जणे जी ने हीज खबर पड़े है, दूजा ने नी, यूँहीं जा मारी जाणे है, के वटा शूँ उनगाय है, के नी', ने वा कर हालत है—

जाणे सा ही जाण सी, या अण जाणी जाण।
नींदर अंदरी लाग सी, ज्या अलख पिछाण॥

अलखपच्चीसी

४—वणां पाच ही बुद्धि रा भेदां (चित्तवृत्तियां) रा ई नाम है, ने नाम शूँ ही ई ओळखाय शके है। अणां में पेलो भेद (प्रमाण) ने दूसरो (विपर्यय) ही मुख्य है। अणां रो ही नाम विद्या ने अविद्या है। बाकी रा तीन तो अणा रे साथे आछा बुरा व्हे'जाय है। पण प्रमाण भी जणी में नी जाय शके, जठे विपर्यय रो तो पत्तो ही कठे लागे, जदी विपर्यय रा कीधा थका प्रपञ्च रो चठे गुजारो ही कूँकर व्हे' शके। पण प्रमाण भी ज्यूँ वणी शूँ है, यूँ ही विपर्यय भी वणी शूँ ही है। नी सुवावे तो पामणां ने पामणां नी सुवावे, पण घर-धणी ने तो सब ही सुहावे।

सू०—प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥७॥

१—प्रत्यक्ष (चौडे) अठोटो (अंदाज) ने शास्त्र प्रमाण है।

२—आगे दिखणो, अंदाज शूँ दिखणो ने साचा रे के' वा शूँ दिखणो, ई ने ठीक दीखणो के'वे है। ई प्रत्यक्ष अनुमान ने आगम वाजे है। ई प्रमाण रा तीज भेद है।

३—वणा पाच वृत्तिया मे प्रमाण नाम री वृत्ति रा तीन भेद है। एक तो दिखे सो प्रत्यक्ष वाजे है। ज्यूँ कान शूँ सुणवो दिखे है, ने जीभ शूँ स्वाद दिखे है। यूँ ही आख शूँ रंग, चामडी शूँ

---

(७) प्र०—प्रथम यह कहिये कि प्रमाण वृत्ति किसे कहते हैं ?

उ०—प्रमाण यथार्थ को कहते हैं, उसके तीन भेद हैं—प्रत्यक्ष (इन्द्रियों से जाना जाय सो) अनुमान (अन्दाज) और

सू०—जातिदेशकाल समयाऽनवच्छिन्नासार्व-
भौमामहाव्रतम् ॥३१॥

२—जातरा, जगा'रा, वगतरा, ने नियम रा विचार शूँ भी ई काम नी करणा, पण बिलकुल अणाँ ने छोड़ देणा ही म्होटी तपस्या है, अणी ने ही महाव्रत भी के'है।

(५) प्र०—हे भगवन्! ये पाचों यम जो आपने कहे, वे तो मनुष्य मात्र को ही साधने चाहिये और किसी-न-किसी अश मे सब साधते ही हैं फिर इनमे क्या विशेपता होने से ये विवेक ख्याति (विवेक ज्ञान) के शीघ्र उपयोगी होते हैं?

उ०—इनमे जाति (जैसे गाय वा मनुष्य) देश (जैसे तीर्थ वा मन्दिर) काल (जैसे रविवार वा एकादशी), समय (जैसे भागते हुए वा विश्वास देकर) की कैद (विचार) न रखकर पालने से ही ये महाव्रत कहाते हैं और इनकी कैद मे आये हुए ही ये अणुव्रत के नाम मे कहे जाते हैं अर्थात् किसी के भी लिये कहीं भी, कभी भी, किसी तरह भी इन यमो को कुछ भी नहीं विगडने देने मे ये महाव्रत कहाते हैं और ये महाव्रत ही विवेक ख्याति के शीघ्र उपयोगी होते हैं।

सू०-विपर्य्य यो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम् ॥८॥

१—विपर्यय, मिथ्या ज्ञान। जो सही वात ने नी वतावे।

२—व्हे' तो और, ने दिखे और, ईं ने ऊँधो दिखणो के' है। अणी रो हीज नाम विपर्य्यय है।

३—ने ज्यावृत्ति प्रमाण शूँ उळटी-व्हे' तो कई, ने जाणे कई, वी ने विपर्यय के' है। ज्यूँ आछी ने, खोटी समझणी अर्थात् ऊंधी, सो कणी वगत सुरता व्हे' तो और, ने विचारे और है। सीपडी मे चाँदी रो दिखणो, ने शीदरी ने साँप जाणणो आदि।

४—है, जणी वात ने तो नी वतावे, ने वणी शूँ अवळी (ऊँधी)-नी है ज्यो वतावे, अणी वुद्धि रा भेद रो नाम विपर्यय कियो है। अणी विपर्यय शूँ मिली थकी जतरी वृत्तियाँ है, सब क्लेश-दुखवाळी है। क्यूँके विपर्यय ही दु.ख है। अणीरा ए ज अविद्यादिक भेद है। विपर्यय ने जाण लेणो ही प्रमाण (अविपर्यय) विद्या है, ने जतरा अणी रा भेद है, वतरा ही ईं शूँ ऊँधा रा भेद व्हिया। वी हीज अपेक्षा शूँ विद्या रा ने एक ने देखतां अविद्या रा भेद व्हे'ता जाय। यूँ कुल पाँच भेदाँ रा दो हीज मुख्य भेद है। जी ७-८ वाँ सूत्र मे वताय दीधा है।

---

(५) प्र०—अब विपर्यय वृत्ति किसे कहनी चाहिये सो कहिये?

उ०—प्रमाण से विपरीत को विपर्यय कहते हैं। जैसे—अन्य वस्तु को अन्य वस्तु समझना अर्थात् हो तो कुछ और ही और समझना कुछ और ही। जैसे—रस्सी को साँप समझना, सोने को पीतल समझना आदि।

४—प्रमाण (सत्य), बिना विपर्यय कणी रो व्हे' अणी वास्ते विपर्यय भी साँच रे आशरे हीज है, पण है ऊँधो। ज्यूं दीवारे नीचेरो अँधारो दीवारे आशरे (वणी रे उजाळा रे आशरे) रे'ने भी अधरो। यूं ही' विपर्यय में, ने प्रमाण में भेद है, ने एक शूँ एक बिलकुल विरुद्ध है। जदी विपर्यय तो छोड़ ने प्रमाण में (विद्या में) मनख कूकर आय शके। क्यूंके विद्या वाळा रे तो शास्त्र री (योग री) आवश्यकता ही कई। वी तो योग पाया थका ही है। ने विपर्यय वाळा ई शूँ विरुद्ध व्हेवा शूँ कूँकर पाय शके। जणी पे के' के एक विकल्प, (भेद) बुद्धि रो फेर है। जणी शूँ अठी रा वठी मनख अज्ञान में शूँ ज्ञान में आय शके है। यो मनखाँ में भी समझणा व्हे' जी हीज जाण शके है। यो शब्द रे साथे साथे एक तरे' रो आकार बँधे पण वास्तव में वणी रो अर्थ नी व्हे' है। अणी रो जाणणो ही' निर्विकल्प समाधिज्ञान है। ज्यूँ रेल रे बचे आँकड़ो व्हे' जणी शूँ जुड़ भी जाय, ने खुल भी जाय, यूँ ही विकल्प है। ज्यू टूँटणी रो बींद ने नट, असली भाव बताय ने आप नारी, ने नर नी रे' जाय। यूं आत्मा, अनात्मा, शास्त्र

१—छोरा परणवा जावे, जदी, परणेत रे दिन लड़कावाळा रे घरे सब लुगायाँ मिळने वणाँ में शूँ हीज एक लुगाई ने बींद, ने एक ने लाडी बणावे, ने नवो ब्याव व्हियो व्हे' वणारे घरे नावती बजावती जाय ने तोरण मारे। पछे घरे ही अथवा पाछी आपणे घरे आय ने विधि शूँ परणेत-फेरा फेर वा रो दस्तूर करे'। लुगायाँ समझदार व्हे' तो छाणा गीत गावे ने नी तो पछे घणा ने भूँडे जस्या गावे। यो बींद-बींनणी रे मंगळ रे वास्ते एक टोटको वे' है। सम्पादक—

री विधि रो शास्त्रानुसार सहन करणो, घमड नी करणो। अणाँ तपाँ रो वर्णन गीताजी मे आवे हीज है, के तीन तरे' रा तप है, ने फेर वगाँ रा तीन प्रकार है, ने **'करणो'** शास्त्र के' वे सो, ने **'ॐ तत् सत् यो कह्यो नाम' ने "म्हारे ही आशरे कर्म शघला ही करतो थको।'** आज कल तप, दुःख देवा ने हीज समझ लीधो है। स्वाध्याय, माळा रा मण्या गुड़कावणो नाम राख्यो है, के'क एक आध पाठ मूडा शूँ कर लेणो, ने ईश्वर प्रणिधान रो यो भाव समझ लीधो है, के 'राम करे ज्यो व्हे' है', यूँ कर हाथ पे हाथ मेल बेठा रे'णो। सूत्रकार रो जो अभिप्राय है, वो गीताजी रा श्लोक शूँ स्पष्ट व्हे' है। श्री भगवान पतजलि हंस री नाँई है, जो पक्षियाँ में भी उत्तम समझ्यो जाय है, ने आकाशगामी व्हेवा पे भी पृथ्वी पे चालवा लागे, तो भी वणाँ री चाल री प्रशंसा व्हे'। पाणी मे नी भींजे और तरतो भी रुपाळो लागे, ने चमकी लगाय ने मोती निकाळ लावे, ने दूध पाणी ने न्यारा तो एक यो हीज पक्षी कर शके है। यूँ ही साधन योग भी कह्यो, तो वो भी सबाँ रो शिरोमणी'ज है, ने समाधि विभूति कैवल्य री महिमा भी अणी'ज माफिक है, ने जड चेतन रा विवेक में तो एक ही है। पूर्व जन्म रा सुकृताँ शूँ कणी'क ने हीज समाधि पाद रो अधिकार मिले है। दूज्यूँ साधन पाद तो

अर्पण करना अर्थात् ईश्वर निमित्त काम रना) को क्रिया योग कहते हैं।

नोट—सहन करना (तप) और शास्त्र की आज्ञानुसार सहन करना (स्वाध्याय) और उसका भी अभिमान न करना (ईश्वर प्रणिधान

घात विना जणायाँ कूँकर के'वाय शके। नींद में झट झट आय आय ने विचार ओळखाय नी, जणी शूँ यू जगाय। यू ही मूर्च्छा मे, ने मृत्यु री वगत व्हे' है। सपना मे भी जागृत वत्ते मन वत्तो चचल रे' है। जदी'ज थोडी देर नरी दिखे। पण नींद में तो वणी शूँ भी घणो तेज व्हे' जाय। जदी' ज स्वास घध जाय। यूँ तो सब ही निद्रा हीज है। सिवाय निर्विकल्प समाधि रे, पण तारतम्य रा भेद है। वास्तव मे शून्य रो भान मरणो ही साक्षात्कार है। ब्रह्मलोक तक शूँ पाछा पडे, सो यो ही' भाव वठा तक सूक्ष्म आकार में रे' हीज जाय। अणी शूँ जाग्यो हो' बुद्ध कई-प्रबुद्ध है।

—०❀❀०—

सू०—अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥११॥

१—देख्या री याद ने स्मृति के' है।

२—जाण्या थका ने पाछो याद करणो याद रो दिखणो है (अणी ने ही स्मृति के' है)।

३—या स्मृति हीज सविकल्प समाधि मे रे' है। जी शूँ वा सविकल्प वाजे। अस्मिता तक स्मृति रे' जाय है। ई रे पी नीं' रे वा पे निर्विकल्प समाधि व्हेवे है, ने पाछी व्यवहार री वगत मे निर्विकल्प रो स्मृति अथवा सविकल्प री स्मृति रे'वे ही है।

---

(५) प्र०—अब पाँचवीं वृत्ति जो आपने स्मृति कही थी, उसकी पहिचान की भी कृपा कर आज्ञा करिये।

उ०—अनुभव की हुई वस्तु को याद करना ही स्मृति है।

और ये दीखने वाले रग शब्द आदि एक ही वस्तु की केवल हालत तबदील हो रही है कि जो ऊँचा योग का अधिकारी नहीं होने से इस दीखने वाले शक्ति के उलट फेर को ही बडी बात मानता है। उसको योग मे विश्वास, विना प्रत्यक्ष के नही हो सकता और विना विश्वास आगे बढ नही सकता। इस लिये ऐसे अधिकारी के लिये मै अब प्रश्न करता हूं कि आपने जो आज्ञा की थी कि धारणादि तीनो संयम की सिद्धि हो जाने से सच्चा अनुभव (विवेक ख्याति) मिलता है और उस संयम को सीढी दर सीढी बढाना चाहिये और सब से संयम की ऊची सीढी विवेक ख्याति नाम का सच्चा अनुभव है। परन्तु किसी की यह इच्छा हो कि जो बात होने वाली है अथवा हो गई, उसे जानू तो उसे क्या करना चाहिये अर्थात मद अधिकारी इन्हीं तबदील होने वाली बातो की इच्छा किया करते हैं। ऐसा मनुष्य अष्टाङ्ग योग साधन कर अगर यह इच्छा करे कि मुझे होने वाली बात और होगई उसकी मालूम हो जाय तो योग मे उसकी यह इच्छा कैसे पूरी हो सकती है ?

उ०—हे सौम्य ! प्रत्येक वस्तु की तीन तरह की तबदीली होती है। पहली हालत को पहली तबदीली और पहली हालत को बदल कर दूसरी मे आना इसे ही धर्म परिणाम भी कहते हैं। फिर उस दूसरी हालत में कुछ ठहरने की भी प्रतीति होना लक्षण परिणाम कहलाता है। फिर तीसरी हालत मे जाना

नी समझणो (अणी ने ही वितर्कानुगत, विचारानुगत आनंदा नुगत, ने अस्मितानुगत, सम्प्रज्ञात समाधि भी के' है)।

३—पे'ली तर्क व्हेवे, पण वो भी संसार री कानी रो नी, पण आत्मभान मिल्यो थको रे' है, ने वो तर्क झीणो पडवा शूँ विचार वाजे है। ई में फेर आत्मा री खुलासो वत्तो व्हेवे है—या भी सही व्हेवा शूँ आनन्द वाजे है, ने अणी शूँ भी बारीक व्हेवा शूँ अहंता, अस्मितामात्र रे' जाय है। इ चार तरे'री समाधि वाजे है। अणाँ चार ही हालताँ ने सविकल्प वा सम्प्रज्ञात समाधि भी के' है। क्यूँ के वृत्ति—सुरता ब्रह्म री कानी उलटी तो खरी, पण पड दो रे'गयो। ज्यूँ-ब्रह्म रे वास्ते तर्क करवा लागा। देखे सो ब्रह्म ही है। क्यूँ के, देखवा रो काम तो और रो नी व्हे' शके। अणी ने वितर्कवाळी समाधि वा योग के' है। पण या हीज वात बारीक व्हे', ने अंतर मे आवे जदी विचार युक्त योग के', ने जदी सुरता वत्ती देर ब्रह्म री कानी रे' ने विचार री कानी आवा में देर करवा लागे, जदी आनंद वाळी समाधि वाजे है। फेर आनंद भी घणी री कानी रे' रे' ने आनंद रो भान व्हे'तो जाय वा अहंता (अस्मिता)-वाळी समाधि वाजे है। ज्यूँ कणी सुख री वात सुण ने कही के 'म्हने यो सुख मिल गयो. ई मे फर्क तो नी है ?' यूँ विचार व्हे'णो पे'ली वितर्क री समाधि वाजे है। नी,

---

अस्मिता (अहंभावना) के सहित आत्माकार वृत्ति हो, तब उसे संप्रज्ञात निरोध (समाधि) कहते हैं। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। यहाँ तक अपूर्ण

दीखणो ही देखवा रा वणी रा भ्रम ने मिटावतो जाय है, ने पछे वणी रो देखवो भी दीखवा मे आवा लाग जाय है, ने यूँ क्रम क्रम शूँ वधवा रा ही नाम सवितर्का, निर्वितर्का, सविचारा, निर्विचारा व्हिया है। समापत्ति मे या विशेपता है, के वा भले ही सबीज ही व्हे', पण अणाँ मे शूँ नीचे नी उतराय है, यो ही ईश्वरप्रणिधान मे, ने दूसरा अभ्यासादि रा साधन मे भेद है। अन्य अभ्यास वैराग्य शूँ कठिनता शूँ ज्या सप्रज्ञात व्हे' जणी मे वठे ही पडवा रो (रुकवा रो) भव प्रत्यय रे' जाय है। पण या वात अणाँ समापत्तियाँ मे नी है—जी के एकतत्वाभ्यास शूँ व्हे' है ज्यूँ—

' निराकार भजे वीं ने, पडे मे'नत मोकळी।
म्हारे मे मन देवाँ री, सवाँ री शुण अर्जुण ॥
म्हूँ हरूं जन्म ने मोत, देरदार करूं नहीं।"

अणी मे अणा दो बीज समाधियों रा भेद वताया है। अणाँ ने सबीजा (बीजवाळी) शूँ न्यारी' के निर्बीज है, यो भी भान व्हे'गो बीज बीज है। क्यूँके अणी मे भी शब्द अर्थ, ज्ञान, गुप्त रूप शूँ बीज है।

४—वो बीज विषय सूक्ष्म व्हो'वा स्थूल, पण विष या करावे

इसिये निर्बीज समाधि ही सब से श्रेष्ठ (परम समाधि) समझना चाहिये। इस निर्बीज को ही चैतन्य समाधि भी कहते हैं और इस शून्य समाधि को जड समाधि कहते हैं। क्योंकि इसमें जडता का (दृश्य का) बीज रह जाता है, समय पाकर उसके फिर उठ आने का संदेह रह जाता है।

२—इसी को पहले भवप्रत्यय के नाम से कहा था

सू०—विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार-शेषोऽन्यः ॥१८॥

१—अणीं शू आगे ज्या समाधि परम वैराग्य शूँ थिरता रा स्वभाव वाळी व्हे'है, जी में केवल सस्कार हीज रे'जाय, वा असम्प्रज्ञात वाजे है।

२—शू देखे जणी मे मन लाग ने ऊपरली च्यार ही वार्ता न्यारी व्हे'जाय, यो ही अखंड महा सुख है (अणी ने हीज सस्कारशेष वा असम्प्रज्ञात समाधि भी के' है)।

३—या समाधि पर वैरागवाळा रे व्हे'है। ईं ने ही असम्प्रज्ञात के'वे है। ज्या आत्मा मे अधिकाधिक ठे'र जाय, ज्यूँ स्त्री ने पति पे प्रेम व्हे'जाय, जणी शूँ पी'र (पीहर) सुहावे ही नी। केवल पी र है, सतरोक कठी ने ही सस्कार ही रे'जाय है। अणी में भी आत्माकार वृत्ति अशी व्हे'के वारणे आवणो पसद ही नी करे सिरफ प्रारब्ध रे'वा शूँ वी मे ससार रो व्यवहार व्हे'है। अणी'ज समाधि रो छेटी शू वर्णन करवावाळा शून्य के'टे है। परन्तु या शून्य नी, पण अधिक स्पष्ट है। अणी रे मूडा आगे अबार जणी ने स्पष्ट गणां हां, सो ही ससार शून्य सरीखो लागे है, विराम प्रत्यय के'वे है, ठेरवा रो निश्चय अणी अभ्यास शूँ अर्थात आत्मा

प्र०—हे भगवन्! सो अभ्यास वैराग्य वो पूर्ण हुआ कब समझना चाहिये?

उ०—आत्माकार वृत्ति होने से आत्माकारता का ही वृत्ति को अभ्यास हो जाता है इसी दशा के अनुभव युक्त वृत्ति का रह जाना ही

सू०—ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥११॥

२—पे'ली जोरावर दु'खाँ ने महासुख रा काम (क्रियायोग) शूँ नबळा करदेणा चावे ।

४—अणाँ री वृत्तियाँ ने ध्यान कर, ने मिटावणी चावे। ध्यान शूँ विचार,विद्या सहित एकाग्रता शूँ है। अगी'ज ने प्रसख्यान भी के' है। जदी यूँ ध्यान शूँ ही वृत्तियाँ नबळी पडजाय, जदी प्रति प्रसव शूँ समेटवा शूँ बीजभाव नष्ट व्हे'ने अविद्या नष्ट व्हे'जाय। वृत्तियाँ ने ध्यान शूँ कमजोर कर देणो तो सूधो है, पण कमजोर कर बिलकुल मे'ल मिटाय देणो, (बीज मिटाय देणो) अविद्या गो संस्कार होज नष्ट कर देणो मुशकिल है, ने यो नी व्हियो जतरे पाछो सब अनर्थ व्हेवा गो, कदी-न-कदी ।

---

(१)प्र०— हे भगवन् जब निर्बीज समाधि से ही इन क्लेशों का बिलकुल नाश होता है, तो फिर निर्बीज समाधि का ही अनुष्ठान करना चाहिये । इस क्रियायोग की फिर क्या आवश्यकता है ?

उ०— हे सौम्य ! इनकी स्थूलता ध्यान से मिटानी चाहिये अर्थात् क्रियायोग से क्लेशों को कमजोर कर ध्यान से सूक्ष्म कर फिर समाधि द्वारा निर्बीज कर देना चाहिये । हे सौम्य ! क्रियायोग बिना समाधि की योग्यता चित्त में नहीं आती । इसलिये क्रिया योग से ही क्लेशों को कमजोर कर फिर क्रम से निर्बीज समाधि से बिल्कुल नाश कर देना उचित है ।

सू०—भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१९॥

१—जी प्रकृति में लय व्हिया है, वा विदेहलय व्हिया है, वर्णां में जन्म रो बीज है ॥

२—यूँ ही, जी प्रेम ने विचार रे, वा आनंद ने म्हूपणा रे माथे हीज ठे'र जाय, वणां ने पाछो जन्म लेणो पड़े है (ई विदेह, ने प्रकृति लय वाजे है, अणां री या थोड़ी'क ठे'रवा री थकार भव प्रत्यय भी वाजे है)

३—पलो जो असम्प्रज्ञात समाधि रो वर्णन आयो, वणी शूं वतराक ने त्रस्यो अंदाज व्हे है, के वणी में शरीर री ओशान नी रे'वा शूं अथवा कोई अठा री नाई म्होटो सुख मिलवा शूं, ने वणी मे मन लाग जावा शूं अठीरी (बारली) ओशान नी रे' नी व्हे'गा जी शूं, वणी ने असम्प्रज्ञात (अठा री ओशान वना री) समाधि वे ना व्हे'गा। जणी पे अणी उगणीस माँ सूत्र शूं यूँ वतावे के यूँ ओशान नी रे'णो असम्प्रज्ञात समाधि नी वाजे है। क्यूं के अणी मे तो पारोकी शूं बीज मे रूख री नाई, संसार री उत्पत्ति छिपी थकी रे'है, सो चौमासा रा घास ज्यूँ पाछा जन्म मरण रा भूँगा फूट जाय है। अणी वास्ते कणी भी विषय मे मन लाग जाणो ओशान विना री (असम्प्रज्ञात) समाधि ना वाजे है। क्यूं के वणी मे छिपी रका संसार री ओशान है। एक आत्मा र सरीखी वृत्ति व्हे'जाणो ही असम्प्रज्ञात समाधि है,

---

प्र०—अब इस असम्प्रज्ञात (पूर्ण योग) को न पाकर कोई सम्प्रज्ञात (दृश्य) तक ही आकर ठहर जाता है तो उसकी क्या दशा

नोट—"अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे
प्राणाऽपानगती रुद्धा प्राणायाम परायणा ॥"

श्रीगीता जी

सू०-बाह्याऽऽभ्यन्तरविषयाऽऽक्षेपी चतुर्थः॥५१॥

२—अणाँ तीन ही वाताँ ने छोडने केवल ठे'रणो हीज श्वास रो रुक शू वत्तो सुधारो है। अणी ने हीज चौथे सुधार भी क' है। ई ने हीज केवल कुंभक भी के'वे है।

---

(१) प्र० हे भगवान! आप ने तीन प्रकार प्राण के रुकने के उपाय कहे। इन सब से अधिक प्राणायाम कौनसा है कि जिस के प्राप्त हुए बाद प्राणायाम करने की आवश्यकता ही न रहे।

उ० जो बिना ही पकड़ छोड़ के स्वतः ही प्राण ठहर जाय तब समझ लेना चाहिये कि अब प्राणायाम सिद्ध हो गया। यही चतुर्थ प्राणायाम है। इसे ही केवल कुंभक कहते हैं।

नोट—"प्राणापानौ समौ कृत्वा, नासाभ्यन्तर चारिणौ"

(गीताजी)

"दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव लक्ष्य,
वायुः स्थिरो यस्य विनावरोधम।
मनः स्थिरो यस्य विनावलम्बम,
स एव योगी स गुरु स पूज्य ॥

वैराग वाळा ने व्हे' है, पण वो वैराग वशीकार सायलो ह "वैराग्यात् प्रकृतिलयः, संसारो भवति राजसात् रागात्" ई दोई है। अणी मे कनराक अणी कारिका रो अर्थ भी करे है। मासिद्धिक (?) भव-प्रत्यय वाळा ज्ञानादि स्वाभाविक हो व्हे', वी प्रकृति रा उपाय प्रत्यय वान योगी। शून्यता रा भान रो नास ही ज बीज है। यो पूर्ण ब्रह्म ख्याति विना किस्तरे ? या भाव है।

सू०—श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥२०॥

१—दूजाँ रे विश्वास, ने वी शूँ कोशिश, ने ई श् याद ने याद शूँ समाधि (सविकल्प), ने ई शूँ सत्य दृष्टि व्हे'ने निर्विकल्प समाधि व्हे' है।

२—विश्वास, उमग, याद, ने ज्ञान री समभ शूँ सरा गुरु पावणी आवे है।

३—जणा रे जन्म रो बीज नी रे' अर्थात उगणीश मा सूत्र मे कही, वणी समाधि वाळा शूँ दूजा रे अर्थात द्रष्टा मे तदाकार-वृत्ति-वाळा रे असम्प्रज्ञातसमाधि कूकर व्हे'है ? वणी प व'है, के वणा रे विश्वास अर्थात 'द्रष्टा ई चीज,' यो विश्वास, ने ई विश्वास

---

(५) प्र० बीच मे अटक जाने वाले योगियों का आपने फिर जन्म होना कहा, सो किस उपाय से योगी बीच मे न अटककर असम्प्रज्ञात समाधि पा लेता है ?

नी समझणो (अणी ने ही वितर्कानुगत, विचारानुगत आनंदानुगत, ने अस्मितानुगत, सम्प्रज्ञात समाधि भी के' है)।

३—पे'ली तर्क व्हे'वे, पण वो भी संसार री कानी रो नी, पण आत्मभान मिल्यो थको रे' है, ने वो तर्क झीणो पड़वा शूँ विचार वाजे है। ई में फेर आत्मा रो खुलासो वत्तो व्हे'वे है—या भी सही व्हे'वा शूँ आनन्द वाजे है, ने अणी शूँ भी बारीक व्हे'वा शूँ अहंता, अस्मितामात्र रे' जाय है। इ चार तरे'री समाधि वाजे है। अणी चार ही हालताँ ने सविकल्प वा सम्प्रज्ञात समाधि भी के' है। क्यूँ के वृत्ति—सुरता ब्रह्म री कानी उलटी तो खरी, पण पड़दो रे'गयो। ज्यूँ-ब्रह्म रे वास्ते तर्क करवा लागा। देखे सो ब्रह्म ही है। क्यूँ के, देखवा रो काम तो और रो नी व्हे' शके। अणी ने वितर्कवाळी समाधि वा योग के' है। पण या हीज वात बारीक व्हे', ने अंतस में आवे जदी विचार युक्त योग के', ने जदी सुरता वत्ती देर ब्रह्म री कानी रे' ने विचार री कानी आवा में देर करवालागे, जदी आनद वाळी समाधि वाजे है। फेर आनद भी घणी री कानी रे' रे' ने आनद रो भान व्हे'तो जाय वा अहंता (अस्मिता)-वाळी समाधि वाजे है। ज्यूँ घणी सुख री वात शुण ने कही के 'म्हने यो सुख मिल गयो. ई में फर्क तो नी है ?' यूँ विचार व्हे'णो, पे'ली वितर्क री समाधि वाजे है। नी,

---

अस्मिता (अहंभावना) के सहित आत्माकार वृत्ति हो, तब उसे सम्प्रज्ञात निरोध (समाधि) कहते हैं। इसमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। यहां तक सम्पूर्ण

सू०—विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार-शेषोऽन्यः ॥१८॥

१—अणीं शूँ आगे ज्या समाधि परम वैराग्य शूँ थिरता रा स्वभाव वाळी व्हे'है, जीं में केवल सस्कार हीज रे'जाय, वा असप्रज्ञात वाजे है।

२—यू देखे जणी मे मन लाग ने ऊपरली च्यार ही वार्ता न्यारी व्हे'जाय, यो ही अखड महा सुख है (अणी ने हीज सस्कारशेष वा असप्रज्ञात समाधि भी के' है)।

३—या समाधि पर वैरागवाळा रे व्हे'है। ईं ने ही असप्रज्ञात के वे है। ज्या आतमा मे अधिकाधिक ठे'र जाय, ज्यूँ स्त्री ने पति पे प्रेम व्हे'जाय, जणी शूँ पी'र (पीहर) सुहावे ही नी। केवल पी'र है, अतरोक कठी ने ही सस्कार ही रे'जाय है। अणी मे भी आत्माकार वृत्ति अशी व्हे'के वारणे आवणो पसद ही नी करे सिरफ प्रारब्ध रे'वा शूँ वी मे ससार रो व्यवहार व्हे'है। अणी'ज समाधि रो छेटी शूँ वर्णन करवावाळा शून्य के'दे है। परन्तु या शून्य नी, पण अधिक स्पष्ट है। अणी रे मूडा आगे अवार जणी ने स्पष्ट गणो हो, सो ही संसार शून्य सरीखो लागे है, विराम प्रत्यय के'वे है, ठेरवा रो निश्चय अणी अभ्यास शूँ अर्थात् आत्मा

प्र०—हे भगवन्! तो अभ्यास वैराग्य को पूर्ण हुआ कब समझना चाहिये?

उ०—आत्माकार वृत्ति होने से आत्माकारता का ही वृत्ति को अभ्यास हो जाता है इसी दशा के अनुभव युक्त वृत्ति का रह जाना ही

फरक तो नी व्हे'गा, यूँ व्हे' सो विचार वाळी समाधि वाजे है। अणाँ ने कपिलगीता मे भीति, विक्षेपता, गता, याता ने लीनता की' है। ज्यूँ सासरे जावा मे स्त्रियाँ ने व्हियाँ करे है-पे'ली भय, पछे जाणो, ने पछे वठे अधिक रे'णो, ने पछे वणी ने हीज घर समझ ले'णो। अणी रे आगे री हालत रो अर्थात् असम्प्रज्ञात निर्विकल्प रो आगे वर्णन आवे है। वशीकार नाम रा वैराग शूँ ई च्यार प्रकार री समाधियाँ व्हे' है।

४—यो परम वैराग्य नी व्हे' जतरे, ने वशीकार वैराग्य व्हे' जतरे सम्प्रज्ञात नाम री समाधि वाजे है। सम्प्रज्ञात में भी जगाय, पण गुण रो दर्शन नी व्हेवा शूँ वितर्क आदि शूँ मिल्यो थको साक्षात् व्हे'जणी शूँ छूटयो, ने आवो अणी मे व्हे'तो रे',जणी शूँ ई बुद्धि मे हीज च्यार ही भेद रे'है-**"यो बुद्धेः परतस्तुसः"** नी व्हे'। अणां मे वितर्क मे मोटो, विचार मे बारीकी, ने आनंद मे सुख, ने अस्मिता में केवल आपो हीज रे'जाय है। पे'ला मे ऊपरला च्यार ही रे'। पण ऊपरला में नीचला छूटता जाणा चाले हीज। क्यूँ के, प्रकृति रो क्रम ही यो है। यूँ नी व्हे'तो कोई छूट ही (मोन ही) नी शके, ने छूट्या भी पाछा पड़ जाय। पण नीचा मे ऊँचो है, पण ऊँचा मे नीचो नी है। ज्यूँ पृथ्वी री [illegible] भेद नी है।

अभ्यास वैराग्य समझना चाहिये। इन मे थोड़ी बाह्यवृत्ति का बीज रहता ही है।

सू०—विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार-शेषोऽन्यः ॥१८॥

१—अणीं शूँ आगे ज्या समाधि परम वैराग्य शूँ थिरता रा स्वभाव वाळी व्हे'है, जीं में केवल सस्कार हीज रे'जाय, वा असम्प्रज्ञात वाजे है।

२—यू देखे जणी में मन लाग ने ऊपरली च्यार ही वार्ता न्यारी व्हे'जाय, यो ही अखड महा सुख है (अणी ने हीज सस्कारशेष वा असम्प्रज्ञात समाधि भी के' है)।

३—या समाधि पर वैरागवाळा रे व्हे'है। ईं ने ही असम्प्रज्ञात के'वे हैं। ज्या आत्मा में अधिकाधिक ठे'र जाय, ज्यूँ स्त्री ने पति पे प्रेम व्हे'जाय, जणी शूँ पी'र (पीहर) सुहावे ही नी। केवल पी'र है, अतरोक कठी ने ही सस्कार ही रे'जाय है। अणी मे भी आत्माकार वृत्ति अशी व्हे'के वारणे आवणो पसद ही नी करे सिरफ प्रारब्ध रे'वा शूँ वीं मे ससार रो व्यवहार व्हे'है। अणी'ज समाधि री छेटी शू वर्णन करवावाळा शून्य के'दे हैं। परन्तु या शून्य नीं पण अधिक स्पष्ट है। अणी रे मूडा आगे अबार जणी ने स्पष्ट गणां हाँ, सो ही ससार शून्य सरीखो लागे है, विराम प्रत्यय के'वे हैं, ठेरवा रो निश्चय अणी अभ्यास शूँ अर्थात् आत्मा

प्र०—हे भगवन्! तो अभ्यास वैराग्य को पूर्ण हुआ कब समझना चाहिये?

उ०—आत्माकार वृत्ति होने से आत्माकारता का ही वृत्ति को अभ्यास हो जाता है. इसी दशा के अनुभव युक्त वृत्ति का रह जाना ही

थिर है, वणी मे निश्चय रा अभ्यास शूँ अर्थात् वणी री थिरता दीखवा शूँ केवल थिरता मात्र अर्थात् आत्मभान री ही जणी मे सत्ता है (संस्कार है), अशी या समाधि असंप्रज्ञात वाजे है।

४—च्यार ही तरे'री संप्रज्ञात समाधि की', अणी सिवाय एक अणी शूँ अनोखी ही समाधि है, वणी ने ई ने देखताँ भले ही के'वो', पण है, तो महासंप्रज्ञात भी वणी मे पुरुषाकार वृत्ति व्हेवा शूँ, ने पुरुष जो प्रकृति शूँ विलक्षण, ने सलक्षण व्हेवा शूँ सर्जी प्रकृति रा आभड़ शूँ छेटी, ने निरंतर नखे रे'वा शूँ वृत्ति एकदाण भी या हालत पायाँ केडे, वणी मजा ने नी भूलाय शके

'नश्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति ।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥"

अणी संस्कार रे'जाय, वा, तो दशा (हालत) ही न्यारी है। यो ही योग परम है। संप्रज्ञात रो ही संप्रज्ञात, ज्ञान रो ही ज्ञान रो है, ने अणी रे आगे यो ज्ञान ही अज्ञान है, वा अणी जड ज्ञान शूं संप्रज्ञात [illegible] ? ने बुद्धि शूँ परम विराम प्रत्यय है, वणी रा [illegible] है, सो दाय'नी आगे १९ मे किया। जी बुद्धि मे आवेगा, ने [illegible] यो, जो बुद्धि शूँ पर है। १८ मो, ने २० मो बुद्धि शूँ पर [illegible] प्रत्यय यो वाजे है। अणी'ज मे शून्य रो भान मिटे है, [illegible] रो ही नाम विराम प्रत्यय या संस्कार है।

[illegible] निरोध करा जाता है (यमी अभ्यास वैराग्य पूर्ण हो जावे है)।

सू०—भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१६॥

१—जी प्रकृति में लय व्हिया है वा विदेहलय व्हिया है, वणाँ मे जन्म रो बीज है ॥

२—यूँ ही, जी प्रे'म ने विचार रे, वा आनंद ने रूपणा रे साथे हीज ठे'र जाय, वणाँ ने पाछो जन्म लेणो पडे है (ई विदेह, ने प्रकृति लय वाजे है, अणाँ री या थोडी'क ठे'रवा री कशर भव प्रत्यय भी वाजे है)

३—पे'ली जो असम्प्रज्ञात समाधि रो वर्णन आयो, वणी शूँ कतराक ने अश्यो अंदाज वधे है, के वणी मे शरीर री ओशान नी रे'वा शूँ अथवा कोई अठा री नाई म्होटो सुख मिलवा शूँ ने वणी में मन लाग जावा शूँ अठीरी (बारली) ओशान नी रे' ती व्हे'गा, जी शूँ, वणी ने असंप्रज्ञात (अठा रा ओशान वना री) समाधि के ता व्हे'गा। जणी पे अणी उगणीश माँ सूत्र शूँ यूँ ‑ तावे, के यूँ ओशान नी रे णो असंप्रज्ञात समाधि नी वाजे है। क्यूंके अणी मे तो बारोकी शूँ बीज मे रूख री नाई, संसार री उत्पत्ति छिपी थकी रे' है, शो चौमासा रा घास ज्यूँ पाछा जन्म मरण रा भूँगा फूट जाय है। अणी वास्ते कणी भी विषय मे मन लाग जाणो, ओशान विना री (असम्प्रज्ञात) समाधि ना वाजे है। क्यूंके वणी मे छिपी थका ससार री ओशान है। रण आत्मा रे सरीखी वृत्ति व्हे'जाणो ही असम्प्रज्ञात समाधि है,

---

प्र०—जब इस असम्प्रज्ञात (पूर्ण योग) को न पाकर कोई संप्रज्ञात (इतर) मन ही आकर ठहर जाता है तो उनकी क्या दशा

या याद राखणी चावे। अणी रो ही गीताजी मे वर्णन है, के—

'अनत सुख दीखे वो बुद्धि शूँ इन्द्रियाँ विनाँ"

ई रो भाव यो है, के द्रष्टा (आत्मा री ओलखाण) जणी वृत्ति मे नी वणी मे ससार रो (जनम मरण रो) बीज अवश्य है, या याद राखणी। पे'ली सप्रज्ञात ने पछे असप्रज्ञात समाधि की' ने वचे ठे'र जावारो असप्रज्ञात भी चेताय दी दी। आगे या वतावे है, के विश्वास आदि वीश मा सूत्र मे किया, वणाँ विना योग में चालणो ही नी आवे, ने वणाँ में फरक रे' जावा शूँ वचे रुकाय जाय, या ही ज अठे उगणीश माँ सूत्र मे की' ज्या समाधि है।

"पाछा फेर भले जन्म पाया जो ब्रह्म लोक भी।
म्हने पायाँ पछे पाछा कोई जन्मे कदी नहीं॥"

८—सप्रज्ञात रा मुख्य च्यार भेद वताया, असप्रज्ञात रा दो भेद है निर्बीज असप्रज्ञात तो परम वैराग्य शूँ पुरुष ख्याति व्हेवा प अणी शून्यता रहित साक्षात्कार री हालत है। दूसरी सबीज असप्रज्ञात है। वणी रा भी फेर दो भेद है,—भव-प्रत्यय, ने उपाय-प्रत्यय। ई मायँ असंप्रज्ञात (निर्बीज) ने तो पुरुष प्रत्यय के' सका हाँ। अणी में भव ससार रा निश्चय वाळा विदेह, देवता, प्रकृति में लीन क्रिया थका रे वे' है। अणाँ ने ब्रह्मानन्द जशो भान व्हे, पण वश थोड़ा भव-प्रत्यय रो मार रे' जाय, जणी शूँ ससार ने आवणो पड़े। पण उपाय साधन रो निश्चय रे' जी [illegible]। वणी रो वर्णन आगला सूत्र में है। भव-प्रत्यय

[illegible] है? जन्म से जन्म से ही बिना साधन ही योगी होते हैं इसका क्या कारण है?

वैराग वाळा ने व्हे' है, पण वो वैराग वशीकार मायलो ह
"वैराग्यात् प्रकृतिलयः, संसारो भवति राजसात् रागात्"
ई दोई है। अणी में कतराक अणी कारिका रो अर्थ भी करे है।
सांसिद्धिक (?) भव-प्रत्यय वाळा ज्ञानादि स्वाभाविक ही व्हे', वी
प्रकृति रा उपाय प्रत्यय वान योगी। शून्यता रा भान रो नाम
ही ज वीज है। यो पूर्ण ब्रह्म ख्याति विना किस्तरे ? यो भाव है।

सू०—श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥२०॥

१—दूजाँ रे विश्वास, ने वी शूँ कोशिश, ने ई शूँ याद, ने याद शूँ समाधि (सविकल्प), ने ई शूँ सत्य दृष्टि व्हे'ने निर्विकल्प समाधि व्हे' है।

२—विश्वास, उमग, याद, ने ज्ञान री समझ शूँ महा गुप्त पावणी आवे है।

३—जगाँ रे जन्म रो वीज नी रे' अर्थात उगणाश मा नत्र मे फळी, वणी समाधि वाळा शूँ दूजा रे अर्थात द्रष्टा मे तदाकार-वृत्ति-वाळा रे असम्प्रज्ञातसमाधि कुकर व्हे' है ? वणी पे ये है, के पणा र विश्वास अर्थात 'द्रष्टा है ईज,' यो विश्वास, ने ई विश्वास

(५) प्र० वीच मे अटक जाने वाले योगियो का आपने फिर जन्म होना कहा, तो किस उपाय से योगी वीच मे न अटककर असम्प्रज्ञात समाधि पा लेता है ?

याद ने शान्ति, अणा शूँ अणी परम वैराग्यवाळी समाधि ने पावे है। ज्यार नी पावे जतरे वणारे ई उपाय रो निश्चय सौंय ने शूँ उमग अर्थात् तदाकार करवा री हाश, ने वणी शूँ याद। भाव यो-के 'दृष्टा है.' अणी विश्वास शूँ आपो आप उमग व्हे' है, ने उमग शूँ दृष्टा रे आकार री वृत्ति व्हे' जाय, ने पाछी बारणे आवा पे दृष्टा है' अणी विश्वास शूँ वृत्ति दृष्टा री कानी आवे, ने यूँ आवा शूँ उमग वधे, जणी शूँ फेर अधिक नजीक अर्थात दृष्टा रे आकार वृत्ति व्हेवा ने वीं शूँ दृष्टा रे आकार व्हेवा री याद (स्मृति) रे'वा लाग जाय, ने या याद ही अधिक रे'णो समाधि रहता है, ने स्थिरता शूँ पछे असो स्थिरता व्हे'जाय, के दृष्टा ने छोड़ने वृत्ति और जगा जाय ही नी, या ही' असम्प्रज्ञात समाधि वाजे है। अणी असम्प्रज्ञता मे, ने जन्मदेवा वाळी असम्प्रज्ञता मे नगोई फरक है। या तो दृष्टा रे आकार वृत्ति व्हेवा शूँ व्हे' है, ने वा दृश्य रे आकार व्हेवा शूँ व्हे' है, ने दृश्य रे आकार वृत्ति रा व्हे'णो एक तरे' री नींद है, ने दृष्टा रे आकार व्हे'णो एक तरे'रो जागणो है, अर्थात वो मरणो है, ने यो जीवणो है। ऊपरे कह्यी थकी वातों विना योग मे समझणी ही नी आवे, ने अणां मे फरक रे'जावा शूँ वणे ही कहवत लाग। सा जाणे, के 'म्हूँ योगी', पण वो योग रो रोगी

---

२० प्रथम तो योग में श्रद्धा ही मुख्य मानी गई है, इससे उत्साह बढ़ता है। उत्साह (वीर्य) से स्मृति (याद) रहने लगती है। याद से शान्ति और सत्य का अनुभव मिलता है। शान्ति अनुभव से फिर अधिक श्रद्धा (विश्वास), उत्साह

सू०—तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥२१॥

१—खूब वेगवाळा रे झट ही।

२—तेज चाल वाळा रे महासुख मिलवा में देर नी लागी। (ई ने तीव्र संवेग के'है)।

३—पण पे'ली श्रद्धा, फेर उमंग (उत्साह), फेर स्मृति (याद), फेर थिरता, ने पछे अडिग थिरता व्हे'है। यू तो अणी अडिगता ने पावा में नरी देरी लागे है। अणी पे भगवान् सूत्रकार आज्ञा करे है, के ज्यां रा वेग तेज व्हे' वणी रे तो झट ही या समाधि प्राप्त व्है जाय है। ज्यूं-कोई चित्तौड़ शूं उदयपुर जाणो चावे, तो वचला [illegible] रो हाल सुण ने यूं पूछे, के कतरा दिन में उदयपुर पूग [illegible]? तो वणी ने पाछो यूं हाल पूछणो पड़े, के थूं कूँकर [illegible] है? [illegible] में जायगा तो वणी माफिक जायगा ये [illegible], [illegible] विमान में अधिक शूं अधिक जल्दी पहूँच शके है। [illegible] उदयपुर ने चित्तौड़ रे बचे साठ बीज मील है, पण [illegible] जतरो तेज व्हे'गा, वशी ही तेजी शू वी मील [illegible] जायगा। यूं ही स्रष्टा री कानी वृत्ति रो वेग जतरो [illegible] अर्थात् विश्वास जतरो तेज व्हे'गा, वतरी ही झट [illegible] समाधि प्राप्त व्है जायगा। क्यूं के सूत्र में संवेग पद [illegible]। वणी रो मतलब है ठीक वेग अर्थात् स्रष्टा री कानी [illegible] दुनिया में वेग व्हे' रिया है ने परमारथ

* प्र०—इस प्रकार अभ्यास करते योगी को परम योग (असम्प्रज्ञात समाधि) प्राप्त करने में कितना समय लगता है। कितने समय में परमयोग मिलता है—परम शान्ति मिलती है?

आदि तीन भेद है। वणी मे ज्ञान तो सू० १६, १८, मे कियो, ने यू ही विदेह लय रे १९ मा मे ऐश्वर्य कियो। अबे तीन ही पुरुषप्रत्यय भवप्रत्यय, ने उपाय-प्रत्यय मे मुख्य उपाय-प्रत्यय योगाभ्यास ही लियो। ई मे ही विवरण आवे है। जीं शूँ योगी ने उपाय, धर्म, योगानुष्ठान, ध्यान लगाय नैं श्रद्धा युक्त के'णो, यो भाव साख्य, योग गीता, आदि सर्व सम्मत है। सिरफ साख्य, वो उपाय प्रत्यय, लेवो (ज्ञान) ही माने है। योग के'है, तो यो हीज, पण ज्यो अधिकारी वो'वणी भूमिका शूँ हीज चाल शके है।

सू० मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोपि विशेषः ॥२२॥

कानी मन लागवा शूँ भी मन ठे'र जाय है अर्थात् नींद री अथवा सपना री जठे याद है, वठे मन लागणो भी मन ठे'रवा रो कारण है।

८—जो वैराग मे हीज उळझ ने ठे'राय जाय, तो शून्यता हीज रे'जाय, । जी शूँ वैराग्य शूँ प्रकृतिलय व्हे'तो दीखे, स्वप्न ने निद्रा रा ज्ञान रो अवलवन करे, तो वणी वैराग्य री शून्यता शूँ निकळ, ने ज्ञानावलवी व्हेवाय जाय। अणी तरे' शूँ ई एक कानी शूँ छुडाय, ने दूसरी कानी उळझाय नी दे', अणी री ओशान राख, ने आपाँ ने अनुकूल पडती व्हे' वशी कर्मशुद्धि करणी चावे, जणी शूँ तरे' तरे' रा उपाय भूमिकानुसार विकल्प कीधा है। कोई कणी रे, ने कोई कणी रे उपयोगी दवा (औषध) री नाईं ई व्हे'है।

सू०—यथाऽभिमतध्यानाद्वा ॥३६॥

१—मुरजी माफिक चावे जणीरा ही ध्यान शूँ भी मन ठे'र जाय है।

२—मन लागे जणी मे ठे'राय देवा शूँ भी मन एक कानी लागे है।

३—जो जो वस्तु आपाँ ने आछी लागे, वणी री छाप माँय ने पड जाय है। अणी वास्ते चावे जणी ही आपणाँ शोख (पसद) री चीज रे साथे आत्मा रो ध्यान करवा लाग जाणो, के अणी आपणाँ शोख रो साक्षी वा ठे'राव अणी'ज जगा' है। यूँ भी

---

(५) प्र०—हे प्रभो ! अनेक स्वभाव के मनुष्य होने से एक ही उपाय सब के अनुकूल हो नहीं सकता इसलिये कोई ऐसा उपाय बताइये कि सब के अनुकूल हो।

३—ईश्वर मे मन लगावा शूँ भी घणो झट असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त व्हे'जाय है। ईश्वर समर्थ ने के'है, ने एक शू एक वडो ने समर्थ है। पण जठे समर्थपणा री अवधि है, जी शू वडो तो कई पण जणी जग्यो भी और नी व्हे',वो ईश्वर—

नी आप सो और वडो कठे तो
है वापडा सर्व वडा अठे तो (गीताजी)

सब ही समर्थ है। पाणी मे भी बीज ने ऊगावा री सामर्थ्य है, वडलारा बीज मे वडला रो म्होटो रूँख वणवा री सामर्थ्य है। पण यू ही सामर्थ्यां सबाँ मे आई कठा शूँ ने आँपाँ जाणाँ आँपाँ मे या सामर्थ्य है राजा जाणे म्हारा मे या सामर्थ्य है पण देखाँ हाँ के वी सामर्थ्यां थिर नी है—घरी नी है। जदी यो विचार मनख करे, के म्हारा मे बोलवा री, विचारवा री सामर्थ्य है सो वणी आधार पे ठे'र री है, कठा शूँ आई ने कठे जायगा, ने ई री खजानो घण्यो है, तो वो आँपणो जोर ने ईश्वर मे समझ लेगा। फेर आँपणो नाम शूँ कई भी पे'ली ज्यू वाकी नी रे'गा, पण ज्यो रे'गा वो ईश्वर प्रणिधान के' है। ज्यू—

"विजन ज्यूँ यो विश्व है, सुर ज्यूँ ईश्वर जाण।
वणी विना यो नी रहे, इण विन वठे न राण॥"

अणी ईश्वर प्रणिधान री ही गीताजी में भी सुन्यला है-

"वीरे ही शरणे जाव, सदा ही सव भाव शूँ।
वीं री कृपा शूँ पावेगा स्थान शान्ति अरलट रो॥
रगो फेर सबो रही, हिया मे वैठ ईश्वर।'

या नहीं। ?

२०—परमयोग ईश्वरप्रणिधान(भक्ति) मे भा समाधि प्राप्त होजाता है।

के जणी एक रे मिटावा शूँ बाकी रा चार ही मिट जाय। जणी पे के' वे है, के एक अविद्या ही सब क्लेशाँ रो मूळ है। अणी रे मिटवा शूँ सब क्लेश मिट जायगा। अणी पे या बात आवे, के हरे'क क्लेश व्हे'ती वगत दूसरा क्लेश तो नी दीखे, ज्यूँ, राग री वगत मोह कठे परो जाय, ने राग री वगत क्रोध कठे रे' है-जो राग री वगत द्वेष नी व्हे' तो पाछो द्वेष री वगत कठा शूँ आय जाय है, ने राग री वगत द्वेष रे'वे, तो दीखे क्यूँ नी है। क्यूँके वो ही रीश करतो थको साथे ही प्रेम करतो नी दीखे, ने यूँ ही प्रेम रे साथे ही रीश करतो भी कोई नजर नी आवे। जदी एक क्लेश नजर आवे वणी वगत बाकी रा क्लेशाँ री कई हालत व्हे'है। क्यूँके म्हाँणे क्लेशा ने मिटावणा है, ने सब क्लेशाँ रा मूळ ई पाँच हीज है। अणाँ में भी एक अविद्या ही सबाँ रो मूळ है। जदी या बिलकुल मिटजावा री म्हाँने निश्चय कूँकर व्हे'। क्यूँके वे'वार मे देखाँ तो भी आज अणाँ साधनाँ रे घटजावा शूँ मनखाँ मे अतरी फूटारोळ मचगी'है। जठी देखो वठी मनखाँ रा जीव ठिकाणे नी है। कोई कड उपाय सुख रो विचारे, कोई कठीने ही

विच्छिन्न (अस्तव्यस्त) कहते हैं और जब एक ही क्लेश प्रबल होकर अन्य सब दब जाते हैं तो क्लेशों की इस दशा को उदार (प्रबल) दशा कहते हैं। अब चाहे सो क्लेश इन (प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, उदार) चारों हालतो में से चाहे, जिस हालत में हो परन्तु अविद्या ही उनका कारण (मूल) समझना चाहिये, अर्थात् सब हालतों में सब क्लेशों का कारण अविद्या ही है।

(नोट) बालक में प्रसुप्त, साधक में तनू (सूक्ष्म), राग द्वेपवान में राग के समय द्वेप विच्छिन्न और द्वेप के समय राग विच्छिन्न

सू०—क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष-विशेषः ईश्वरः ॥२४॥

१—क्लेश, कर्म-विपाक, ने आशय शूँ न्यारो, जीव शूँ विशेष ईश्वर है।

२—दुःख, दुःखरा कर्म, दुःखरा फळ, ने दुःखरा विचार, याँ शूँ न्यारो, ने जीव शूँ वत्तो परमेश्वर है।

३—ईश्वर मे, ने जीव में अर्थात् आँपाँ में, ने ईश्वर में कई फरक है? अणी पे के' है, के बेसमझी, ने वीं शूँ कर्म, ने वीं शूँ वींरा फळ, ने वणी शूँ वणाँ रीं याद, अणाँ में उळझतो रे' सो जीव, ने अणाँ मे नी उळझे वो जीव शूँ विशेष है, ने वो ही ईश्वर वाजे है। अणी पे उपनिषद में एक दृष्टान्त दीधो है, के एक ही पीपळा पे एक ही सरीखा दो पखेरू है। वणाँ मे कई फरक नी है। सब वाताँ मे एक सरीखा है, पण सब वाताँ एक सरीखी व्हेवा पे भी वणाँ मे यो भेद है, के एक तो पीपळा खाय रियो है, ने एक देखरियो है—पण खाय नी रियो है। जदी अणी खावावाळे देखवावाळा री आडी देख्यो, ने अणी रो भी खाणो छूट जाय, ने खाणो छूट्याँ पेहे, तो फेर दोयाँ मे और कई फरक नी रे'। क्यूंके फरक तो यो एक हीज हो, जो वणी रे देखवा शूँ अणी रो खाणो छूटणो है, ने खबर पडणो भी वणी रे देखवा शूँ है—

---

(५) प्र०—हे भगवन्! ईश्वर के स्वरूप को मुझे समझाइये कि ईश्वर किसे कहना चाहिये?

उ०—जिसे क्लेश (वासना), कर्म-कर्मफल और कर्मों के संस्कार

सू०—तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥२५॥

१—वणी में अनन्त ज्ञान रो बीज है।

२—सारी समझ रो मूळ वणी में हीज है।

३—'ईश्वर में अपार ज्ञान है' ईं शूं यो मतलब नी'के नरी तरे'रो ज्ञान है। पण ईं रो यो भाव है, के जतरा ज्ञान है, वणी में शूं, वा वणी रा आधार पे है, अज्ञान जणी ने के'है, वो भी ज्ञान रा आधार पे है, ने ज्ञान भी वणी रा ज्ञान रा आधार पे है। ज्यूं- **"है भूलणो याद विचार म्हाँ शूं"** अर्थात् यो जो ज्ञान वाजे है, सो ईश्वर रा ज्ञान रे आगे, तो अज्ञान ही है, वो तो ज्ञानघन है।

जाणूं म्हूँ व्हे'गया ज्या ने, जाणूं म्हूँ होयगा सवी।
जाणूं म्हूं होरया सो भी, नी जाणे कोइ भी म्हने ॥१॥

श्री गीताजी

एक ही रथ में विराजमान नजीक'ही अकर्ता ईश्वर रूशी साक्षात् वाता कर रिया है। जतरे वणी ईश्वर ने नीं पिछाण्या वतरे ही वो सवाल जवाब करतो रियो, जाण्या केडे, तो वो ही जाणे रथ रो एक अग व्हे गयो।

४—वणी ईश्वर में, ने आपोणे (पुरुष) में सर्वज्ञपणो तो एक ही है। अणी'ज एकता शूं आपों ने ईश्वर प्राप्ति व्हे'है, वा

---

(४) प्र०—हे प्रभो! ऐसा ईश्वर कहाँ है दिखने में तो नहीं आता?

उ०—हे सौम्य! तेरे में जो इन वस्तुओं को जानने की ज्ञान शक्ति है वह उसी ईश्वर से है और उसमें वह अनन्त ज्ञान है जानने वाले को कैसे जानेगा।

३—अणी में या हीज वात समझाई है, के एक शूँ एक में ज्ञान उतररियो है। पण अणी'ज रो ज्ञान पे'ली रो ज्ञान है, ज्यूँ ऊना पणो सूरज में शूँ ठामडे (वरतन) लीधो सो ठामडो भी ऊनो व्हे'गयो। ठामडा में शूँ पाणी लीधो, ने पाणी शूँ हाथ ने ऊनो जणाणो, पण वो ऊनो सूरज रो हीज है, ने अणी में शूँ ही जणावे। ज्यूँ—

"इन्द्रिया ने परे जाण, इन्द्रिया शूँ परे मन।
मन शूँ पर बुद्धी ने, बुद्धि शूँ पर सा वही॥
चार ही मनु पे'ली रा सात ही जी महा ऋषी।
ई म्हारा मन रा भाव, थाँरा सारा चराचर॥
म्हारी उत्पत्ति नी जाणे, देवता ने महा ऋषी।
म्हूँ ऋषीश्वर देवां रो, सवां रो आदि कारण॥"

अनादि अनन्त है अर्थात् समय शूँ ईश्वर नी वणे, पण ईश्वर शूँ समय वणे है। पे'ली जो ज्ञान आयो सो अणी'ज परमात्मा शूँ आयो। अवार जो आय रियो है सो भी, ने अबे आवेगा सो भी एक अणी'ज शूँ है। पे'ली, पछे, अवार, ई वगत रा भेद है, ने ई भी एक सतत दृष्टा अविनाशी एक रस शूँ ही साबित व्हे' है। जी शूँ सबा रो गुरु यो ही एक है। आपाँ ने ज्ञान सिखावे वो, ने आपाँ में ज्ञान सीखे वो, दोई एक अणी'ज शूँ है।

३०—हे सौम्य! तेरे माता पिता में और उनके भी माता पिता में यों सब में - इसी परमेश्वर की दी हुई ज्ञानशक्ति है। क्योंकि तेरे में और तेरे माता पिता आदि गुरुजनों में समय का ही भेद है। परन्तु यह समय के भेद से अलग केवल ज्ञान स्वरूप है। क्योंकि—

सू०—तस्यवाचकः प्रणवः ॥२७॥

१—वणी रो ॐ कार नाम है।

२—ॐ कार वणी रो नाम है।

३—अश्या ईश्वर रो नाम याद करावावाळो ॐ है। क्यूंके थोडो शूँ थोडी, ने अधिक शूँ अधिक, पकड विना नाम नी लेणी आवे। ज्यू-छेटी हेलो पाडणो (वुलावणो) वत्ती पकड है, तो मन मे विचार करणो ओछी पकड है। मई पकड शूं ही वत्ती पकड वणे है। ज्यू-विना विचार कीधाँ बोलणो नी आवे पे'ली मही विचार व्हेवे, पछे वी हीज कठ मे पकडाय, ने प्रकट व्हे' वणी ने बोलवो के'है। बोलवा मे भी दो भेद कीधा हे—एक तो राग रो, ज्यू कोई लै' लेवे, ने एक वातांचीताँ करे सो। परन्तु राग रो बोलवो ने वाताँ रो बोलवो दोयाँ मे ही एक तरे'री धुन (ध्वनि) व्हियाँ करे। वणी रा ही ई सब भेद है। वा वारीक शूं वारीक धुन हीज ईश्वर रो नाम है ने वाहीज सब अक्षर राग विचार मे मिली थकी है। वणी ने ही ॐ कार के'है। ज्यू—

> एक अक्षर ॐ ब्रह्म, वाक्तो चिंततो म्हने।
> जो देह तजने जावे, पावे वो परमा गति ॥१॥
>
> श्री गीताजी

अणी'ज शूं अणी ने अक्षर ब्रह्म के'है। क्यूंके वणी धुन रो घटणो नाश नी है—एक समान सर्व व्यापक है। अणी'ज रो

---

(५) प्र०—ईश्वर के स्वरूप को सुनते ही मुझे बहुत शान्ति हुई, अब कृपा कर प्रणिधान किसे कहते हैं, सो भी आज्ञा कीजिये।

याद व्हे'ती रे' है। यो ही प्रणव रो जप, ने वी री भावना है। अणी मरीखो सरल उत्तम और उपाय ही नी व्हे'शके। यो ही माण्डूक्य उपनिषद् में ठीक समझायो है, ने सर्वत्र सत्शास्त्र या ही बात के'है। यू जतरा भगवत् भाव शूँ नाम है, सब ही प्रणव है, ने भावरहित भी वणी रा नाम तो प्रणव हीज है। अणी वास्ते ज्यू व्हे' ज्यू वणी रो नाम, ने अर्थ विचारता रे'णो।

—०ॐॐ०—

सू०—तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥२८॥

१—वणी रो जप, ने वीं रा अर्थ री भावना।

२—अणी रो जप करणो, ने अणी रा अर्थ ने विचारणो।

३—वणी ईश्वर रा नाम रो जप वारवार स्मरण करणो, ने वीं रा (ॐकार रा) अर्थ री भावना करणी अर्थात् ऊपर लिख्या माफिक भावना व्हे'णी ही ईश्वर प्रणिधान है। ई रो रहस्य गुरु मुख शूँ माण्डूक्य उपनिषद् समझवा पे मालुम पड़जाय, पे यो वास्तव में एक बडो सरल, ने जल्दी परमात्मा (द्रष्टा) री प्राप्ति रो उपाय है। नाम विना कोई वीने पिछाण नी सके— नाम मय ही सब है। अणी वास्ते ईश्वर रो नाम व्हे' तो ईश्वर भी ओळखाय जाय, जी केवे, के ईश्वर रो नाम नी है। वणो रो

(५) प्र०—प्रणव के द्वारा प्रणिधान कैसे किया जाता है ?

उ०—प्रणव के जप के साथ प्रथम कहा उस के अनुसार ईश्वर की भावना होते रहना ही प्रणिधान (भक्ति) है।

"ॐ तत् सत् यो कह्यो नाम, ब्रह्म रो तीन भाँति शूँ ।
अणी'ज शूँ ब्रह्मज्ञानी, ॐकार कहने सदा ॥"

श्री गीताजी

४—यूँ वणी रा ॐ प्रणव नाम रा अर्थ री भावना ही प्रणव (नाम) रो जप है। पण यूँ भावना छूट जाय तो पाछो प्रणव रा (ॐ कार रो) जप ज्यूँ व्हे' ज्यूँ ही करवा लाग जाणो। यो ही अणी रो उपाय है। अर्थ भावना ही समाधि है, ने ई रा (प्रणव रो) जपणो ही साधन है। साधन मे शूँ समाधि में, ने समाधि शूँ साधन में अणी सिवाय और कई धंधो ही नी है। अणी'ज पे कियो है के (स्वाध्यायादि०) अणी शूँ ईश्वर प्रणिधान व्हे' ने, भगवान् प्रसन्न व्हे, ने सब विघ्न स्वत ही मिटाय भट ही अपणाय लेवे।

सू०—ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोप्यन्तराया भावश्च ॥२६॥

१—ई शूँ आत्मलाभ व्हे' और विघ्न भी मिटे है।

२—ई शूँ नजीक ही महासुख मिले, ने अटकों भी मिट जाय।

३—ऊपरला सूत्रों मे कियो, जणी माफिक ईश्वर मे मन लागवा शूँ एक तो योग रा सब विघ्न मिट जाय और यो लाभ व्हे', के आपणो ज्ञान आपां ने व्हे' जाय। या बात सब योग रा साधन शूँ व्हेवे हीज है। परन्तु पे'ली पे'ली साधन करवावाळा

२०—और उपायों (अभ्यासों) की अपेक्षा ईश्वर प्रणिधान (भक्ति) में क्या विशेषता है?

वारला मे हीज रे'वाय जाय है। वारला में शूं असली अतर रा (मॉयला) में आवणो घणो कठिन पडे है। अणा ज अटक में जमारा वीत जाय,। यो ही वृत्ति सारूप्य, ने स्वरूपावस्थान पे'ली कियो हो सो ही ई शूँ सहज में मिल जाय। अणी सिवाय योग रा विघ्न भी अणी'ज भक्ति शूं साथे ही आपो आप मिटता जाय है। परन्तु वा (भक्ति) और कणी में ही यूँ नी व्हे'। पछे ई ने यूं निश्चय व्हे जाय के म्हारा मे ही ई क्लेश आदि नी आय शके ने ई तो अविद्या रा कीधा थका है। जदी म्हारी भी आत्मा प्रभु मे तो अणा री छाया भी नी पडे यूँ अणी ने साफ दीखे।

सू०—व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति-
भ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थित--
त्वानि चित्तविक्षेपास्तेनान्तरायाः ॥३०॥

१—व्याधि, स्त्यान, संशय प्रमाद आलस्य, अविरति भ्रान्ति दर्शन, अलब्धभूमिकत्व अनवस्थितत्व, ई नौ चित्त ने ठे'रवा नीं दे। जी शूँ ई योगरा विघ्न वाजे है।

२—रोग ढील, बे'म नेरप, आळस [illegible] उलटी समझ,

---

(५) प्र० हे प्रभो! आपने जो आज्ञा की कि ईश्वरप्रणिधान से योग के विघ्न मिट जाते हैं वे योग के विघ्न क्या क्या हैं सो कृपा कर आज्ञा कीजिये।

४—ई नौ विघ्न है, ने एक शूँ एक मिल्या थका है। ई विलकुल मिट जाणा चावे। अणॉ रे मिटयाँ विना योग मे अन्तराय रे' जाय। पण ई मिटे भी योग शूँ ही है, ने योग ने ई आवा भी नी देवे पण ईश्वरभक्ति आपणॉ मे व्हे'ने अणॉ ने मिटाय भी दे' या वत्ताई है व्याधि,=रोग। स्त्यान=ठालापणो। संशय=भे'म। प्रमाद=घोफाई। आलस्य=आळस। अविरति=उळझावट। भ्रांतिदर्शन=ऊँधी समझ। अलब्धभूमिकत्व=आगे नी चलाय शके। अनवस्थितत्व=ठे'रणो नी आवे। ई चित्त रा विक्षेप माथे व्हे' तो विघ्न है, दूज्यूँ तो कई आडा नी आवे।

बेपरवाही), आलस्य, अविरति (विषयों में आसक्ति) भ्रान्तिदर्शन (गलत समझ), अलब्धभूमिकत्व (योग के किसी भी अनुभव को नहीं पाना अथवा इस पार ही रह जाना) अनवस्थितत्व (योग के अनुभव को पाकर भी पीछे नीचे सरक जाना योगानुभव में स्थिर नहीं रहना) यही योग के नौ विघ्न हैं। ये ही योग से चित्त हटाने वाले हैं।

नोट—ये चित्त वृत्ति के चंचल होने से होते हैं।

४—श्वास ने निकाळणो ने खेंचणो जो प्राण रो काम है, अणी शूं भी मन शुद्ध व्हे' ने ठे'रवा लाग जाय है। अणी ने प्राणायाम भी के' है। यो भी सहज ने स्वाभाविक उपाय, मन ने सुधार ने ठे'रावा रे लायक करवा रो है। अणाँ दो ही उपायाँ में सहजता है अर्थात् व्हे'ता ही सवा रे ही रे' है। केवल शारण (तळाव शूं पाणी खेता में ले जावारो धोरा) रो पाणी क्यारे वाळदेणो है" अर्थात् यूं नी, ने यूं, जाण लेणो, ने पछे तो स्वत. ही व्हेवा लाग जाय। क्यूंके स्वाभाविक ही स्वभाव है। वो स्वभाव पटकवा में कई अवकाई ? अस्वाभाविक स्वभाव ही जदी अभ्यो करलीधो, जदी व्हे'ती वात रो कई झगडो।

सू०—विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधिनी ॥३५॥

१—कोई अनोखी चीज दीखवा लाग जाय अणी शूँ मन ठे'र जाय है।

२—मायला अनोखा सुख दिखवा लाग जाय, तो भी मन एक कानी लागे है (अणी ने विषयवती प्रवृत्ति के' है।

३—मन रो निर्मळ व्हे'णो ज्यूं भक्ति रो उपयोगी है यूं ही मनरो ठे'रणो भी भक्ति रो उपयोगी है। निर्मळ व्हियां विना मन

(५) प्र०—हे भगवन्! और भी कोई इस अभ्यास का (तर्ज) है या नहीं ?

उ०—हे प्रिय! विषयों मे ही चित्त चञ्चल रहा करता है। जब

जगा' मन ने ठे'रावा शूँ ई वार्तां दीखे है। क्यूँ के मन साफ व्हियाँ विना ठे'रे नी, ने ठे'रया-विना ई वार्तां दीखे नी, ने विना देख्याँ विश्वास व्हे' नी, ने अणाँ विना ही भक्ति कर शके, वो ऊँचो अधिकारी है, पूर्व-पुण्य री वात है।

४—यूँ अणाँ सहज दोही उपायाँ मे शूँ व्यवहार में मैत्र्यादि, ने त्याग मे प्राणायाम शूँ मन ठे'रे, जदी धारणा री योग्यता मन में आय जाय। वणी शूँ धारणा वैराग्यपूर्वक करे जदी दिव्य पाँच ही विषय रो साक्षात् कर शके, जदी लौकिक विषय में ही मन अश्यो लागे जदी दिव्य में लागे अणी रो के'णो ही कई। अवे वैराग्य रा कारण शूँ वणाँ में फँसे तो नी, पण शास्त्र, गुरु, ने अनुमान पे श्रद्धा आवा शूँ परमार्थ मे वणी री चाल तेज व्हे' ने वो झट ही मुकाम पे पूग जाय। अणी वास्ते विषयवती प्रवृत्ति ने भी विषय छोडणा है, तो भी काटा शूँ काटा री नाईं तेज कीधा है।



सू०—विशोका वा ज्योतिष्मती ॥३६॥

१—नरमे' प्रकाश सुरता ने मिलवा शूँ भी सुरता ठे'र जाय है।

२—मायलो उजाळो वा समझ री निर्मळता व्हे' जाय, तो भी मन एक कानी लागे। (ई ने विशोका ज्योतिष्मती के'है)।

३—ई पे'ली रा ३५ वां सूत्र में किया सिवाय मन ठे'रवा रो एक यो भी उपाय है, के शोक रहित उजाळा री कानी मन रो

(५) प्र०—हे प्रभो ! और भी कोई एक तत्वाभ्यास है ?

अणी ने भी समझणी चावे। या भी है, सविकल्पतावाळी'ज, पण अणी शूँ विशेष थिरता जणाय है। ज्या विदेह प्रकृति, लय ने अनुभव व्हिया करे है, अणी शूँ ई ने विशोका कियो है।



सू०—वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥३७॥

१—महात्मा रा चित्त रो विचार करवा शूँ भी आपणो मन ठे'र जाय है।

२—जणाँ रो मन ससार मे नी उळझे, अश्या (महात्मा) रो विचार करवा शूँ भी मन एक कानी लागे है।

३—जश्या मनख रो विचार कराँ, वश्यो ही आपणो मन व्हे'जाय है। ज्यूँ वीर रस शूँ वीररस री उत्पत्ति व्हे'जाय, यूँ ही जणाँ रा मन में राग द्वेष नी है, अश्या महात्मा रो विचार करवा शूँ वणाँ रा चरित्र देख, शुण, वणाँ रा चित्ताँ री हालत विचारवा शूँ वश्यो ही आपणो भी चित्त व्हे'जाय है। जदी'ज के'वे के **संगत शूँ गुण ऊपजे"** ई शूँ महात्मा रा चित्त-चरित्र पे ध्यान देवा शूँ आपणो भी मन ठे'र जाय है।

४—अथवा जदी विपयवती ई दोही व्हेवा शूँ वैराग

५—प्र० हे योगनिधे ! और भी कोई एकतत्व का अभ्यास है ?

उ० महापुरषों के चित्त का ध्यान करने से भी चित्त ठहरने लगता अर्थात् एकाग्रता-एकतत्व का अभ्यास हो जाता है।

नोट—इसे वासना योग भी कहते हैं।

वध्याथका ने नी सुवावे तो वीतराग वैराग्यवान जो वडा वडा शुक वामदेव तीर्थ-कर रा चित्त रो वा वर्णा रा चरित्र रो ध्यान करे तो भी चित्त वणी तरे'रो व्हे'ने ठेर जाय। जदी'ज—"सोइ जस गाय भगत भव तरहीं।" कियो है। जण्या चरित्र रो मनन अतरा शूँ करे, वश्यो ही चित्त वणजाय। अणी वास्ते विषयवती नी सुहावे वा, अणी शूँ निकळणो व्हे' तो वीतराग रा चित्त ने विचारे, तो वो अणाँ शूँ ही आगे निकळ, ने वैराग्यवान री पदवी ने पाय ने मन ने वश करवा रा स्वभाववाळो व्हे'जाय।



सू०—स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥३८॥

१—सपना ने नीद रा ज्ञान पे ध्यान राखवा शूँ भी मन ठेर जाय है।

२—नीद ने सपना री ओशान, ने याद करवा शूँ भी मन एक कानी लागे है।

३ आपां ने नीद आवे है ने सपना भी आवे है। या नीद, ने सपना री ओशान वठे रे है। शूँ नीद ने सपना री ओशान री

(५) प्र०—हे भगवन्! इनका और भी कोई उपाय हो तो वह भी आज्ञा करें। क्योंकि सब के एक ही उपाय अनुकूल नहीं हो सकता।

उ०—स्वप्न में और नींद में जो ज्ञान रहता है उसके मन लगाने से भी चित्त को ठहरने का अभ्यास होजाता है। यह भी एक सत्वाभ्यास है।

कानी मन लागवा शूँ भी मन ठे'र जाय है अर्थात नींद री अथवा सपना री जठे याद है, वठे मन लागणो भी मन ठे'रवा रो कारण है।

६—जो वैराग मे हीज उळझ ने ठे'राय जाय, तो शून्यता हीज रे'जाय, । जी शूँ वैराग्य शूँ प्रकृतिलय व्हे'तो दीखे, स्वप्न ने निद्रा रा ज्ञान रो अवलवन करे, तो वणी वैराग्य री शून्यता शूँ निकळ, ने ज्ञानावलबी व्हेवाय जाय। अणी तरे' शूँ ई एक कानी शूँ छुडाय, ने दूसरी कानी उळझाय नी दे', अणी री ओशान राख, ने आपाँ ने अनुकूल पडती व्हे' वशी कर्मशुद्धि करणी चावे, जणी शूँ तरे' तरे' रा उपाय भूमिकानुसार विकल्प कीधा है। कोई कणी रे, ने कोई कणी रे उपयोगी दवा (औषध) री नाईं ई व्हे'है।

सू०—यथाऽभिमतध्यानाद्वा ॥३६॥

१—मुरजी माफिक चावे जणीरा ही ध्यान शूँ भी मन ठे'र जाय है।

२—मन लागे जणी मे ठे'राय देवा शूँ भी मन एक कानी लागे है।

३—जो जो वस्तु आपाँ ने आछी लागे, वणी री छाप माँय ने पड जाय है। अणी वास्ते चावे जणी ही आपणाँ शोख (पसद) री चीज रे साथे आत्मा रो ध्यान करवा लाग जाणो, के अणी आपणाँ शोख रो साची वा ठे'राव अणी'ज जगा' है। यूं भी

(५) प्र०—हे प्रभो ! अनेक स्वभाव के मनुष्य होने से एक ही उपाय सब के अनुकूल हो नहीं सकता इसलिये कोई ऐसा उपाय बताइये कि सब के अनुकूल हो।

मन ठे'र ने भक्ति रे लायक वणजाय है। क्यूके शोख री कानी वृत्ति ठे'रे हीज है, ने वृत्ति ठे'रे जठे झट ही आत्माकार व्हे'शके है। क्यूके वृत्ति रो ठे'रणो ही योग है, ने जदी'ज आपणाँ आपणाँ इष्टदेव ने परमात्मा मान, ध्यान-करणो चावे, यू सब ही के'है। सूत्र ३२ मा री वात "एक तत्व रो अभ्यास सब विघ्न मिटावे है" या अठे पाछी याद कर लेणी चावे। ईश्वर प्रणिधान, ईश्वर ने जाग ने प्रणव रो जप करवा शूँ व्हे'है। अणी रो ही नाम एकतत्वाभ्यास है। यू ही अठा तक ईश्वर प्रणिधान री रीताँ वताई, अबे अणी सूत्र शूँ वणाँ रो खातो वीडतो (बंद करतो) थकाँ सूत्रकार आज्ञा करे, के चावे जणी मे ही अणी एक तत्व रो अर्थात् भक्ति रो अभ्यास व्हे'शके है—

"जो जो होमे तथा खावे, देवे जो जो करे सदा।
जो जो तापे सभी सो सो म्हारे ही कर अर्पण ॥"

श्री गीताजी

या वात हीज जगा' जगा' गीताजी मे समझाई है। मन आपणा सुहावती वस्तु ही मे जाय है। वणी मे ही ईश्वर रो भान के'णो अणी सूत्र रो अर्थ है। जो धनुषधारी मुरलीधर जगदंबा भावे जस्या ही स्वरूप मे यो एक तत्वाभ्यास व्हे'णो चावे। अणी विना रो ध्यान तो ओछो है। जदी'ज भगवान हुकम करे के-

"मानवी देह मे म्हारो, मान नी मानवी करे।
जाणे जी रूप नी म्हारो, सबाँ रो परमेश्वर ॥

अणी तरे' शूँ, वणी एक रो ईश्वरभाव शूँ ध्यान करणो ने

३०—जो अपने को सब से अधिक प्रिय हो, उसी पदार्थ (वस्तु) मे वृत्ति ठहरा देने से भी चित्त स्थिर हो जाता है।

वो एक आपाँ रे प्यारो सुहावणो व्हे णो चावे, ने असुहावणो भी सुहावणा शूँ व्हे',ने सुहावणो भी परमसुहावणा (नष्ट) शूँ है। यूँ मुरजी व्हे'जणी रो ध्यान करणो, जो खोटी वस्तु सुहावणी व्हे'ने वणी मे भी यूँ ध्यान करे तो भी—

> "झट वो होय धर्मात्मा, अखूट सुख पाय ले'।
> वाण्या, कमीण, नारया भी, पाय लेवे परपद ॥"
>
> श्री गीताजी

जदी उत्तम व्हे' जणी रो तो के'णो ही कही। शुद्ध ब्राह्मण, राजर्षि अणाँ रो तो के'णो ही कही। ३३ वां सूत्र शूँ अठा तक रो वर्णन शोधन कर्म वाजे है अर्थात भक्ति रे योग्य व्हेवा रो काम। अणी ने ही गीता में कर्मयोग कियो है।

४—अथवा आपाँ ने' सुहावे जणी मे ही मन लगाय दे'। पण लगावे एक तत्व मे। स्वप्न, निद्रा रो ज्ञान रा अवलवन भी जणी वगत नी व्हे'तो पछे वणी वगत तो फेर ध्यान मे शूँ हटे हीज। अणी मे यो ३९ मों सूत्र कियो है। ई ३२ वीं शूँ प्रारंभ कर ने ३३ शूँ एक एक शूँ उत्तरोत्तर ऊँची भूमिका रा अभ्यास किया है। पण, अणाँ ने एक एक ने हीज भूमिका माफिक साध, ने पछे आगे वधाय है। यू अभ्यास पूरो व्हे'ने परं वैराग्य व्हे'णो ही कृत (अभ्यास री) कृत्यता (पूर्णता) है, या ही भाष्य में की' है। एक आज ने एक काले यूं नी, पण एक एक ने पकावता जाणो यो भाव है। के' वे,के दृढ़निष्ठा ही परमार्थ पंथ मे चाल है, ने दोडे ने ठे'र जाणो भटको है।

क्योंकि यों चित्त को ठहरने का अभ्यास हो जाता है। वह भी एक तत्वाभ्यास है।

प्र०—परमाणुपरममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥४०॥

१—छोटा शूं छोटो ले'ने वडा शूँ वडा तक यो ध्यान व्हे'णो चावे।

२—छोटी म्होटी चीजां में शूं मन रो भागणो मिटजाणो ही मन रो एक कानी लागणो है। यूँ भागवो छूटणो भी मन रो अधीन व्हे'णो है। (अणी ने ही वशीकार भी के'है)।

३—जणी चाल शूँ कोई पे'ली निशाणो लगावणो सीखे, वणी ने ठे'र्‌या थका ही निशाणो लगावणो पडे है। सो भी पूरी कोशीश शूँ लागे है। परन्तु हाथ जम्यॉ केडे दोडता थका रे छोटी नजी'क सहज ही में लगाय देवे। यूँ ही पे'ली एक ही वस्तु पे मन ने ठे'राय ने अभ्यास करणो चावे, पछे वा चीज मुश्की व्हे'ल्या ही व्हो'। पण जदी हाथ जम जाय, जटा केडे छोटी शूँ छोटी ने वडी शूँ वडी सब जगा' मन ठे'रवा लाग जाय है। क्यूंके मन ठे'र्‌या विना तो कई साबित ही नी व्हे'। ज्यूँ आपां एक कोथरो देख्यो। अबे देखणो के यो कोथरो कठे ठे'रवा शूँ दियो। क्यूँ के जमी पे तो कदकोई पड्यो हो, ने आपां भी पलकांई वठे ऊभा हा ने आखां भी वी पे कदकी ही पडी थकी ही। पण मन जतरे और कानी हो उतरे वणी री खबर ही नी पडी। मन वठी आवतो ही दीख गियो। जी शूँ साबित व्हीके

* प्र—हे भगवन्! अब चित्त को एक तत्व का अभ्यास हो गया यह कैसे मालूम होवे?

४०—छोटे से छोटे और बडे से बडे जिस पदार्थ में चित्त ठहराया

मन ठे'रयां विना कोई साबित ही नी व्हे'। जदी मन ने वत्ती देर ठे'रावा रो अभ्यास करणो ही योग वाजे है, ने अणी रो हरे'क वस्तु पे ठे'राय ने अभ्यास कीदो जाय है। कोई के'वे के बुरी कानी ठे'रे सो भी अभ्यास हीज व्हे'गा सो वात नी। क्यू के दृष्टा री कानी वृत्ति (मन) रो आवणो ही योग अभ्यास है, ने वो हरे'क वस्तु रे साथे दृष्टा रो भान रे'वा शूँ व्हे'है। फेर वा हीज शका व्हे'के बुरी कानी भी मन ठे'राय ने यो दृष्टा री कानी रो अभ्यास कीधो जाय, तो वो योगाभ्यास वाजेगा ? तो अणी रो जवाव यो है, के अवश्य वाजेगा, जदी'ज कि'यो है के—

> "जो वो महादुराचारी, म्हारी भक्ती'ज आचरे।
> साधू ही जाणणो वीं ने, वीं रो निश्चय-उत्तम॥
> झट वो होय धर्मात्मा अखूट सुख पायले'।"

अणी सूत्र रो मतलव यो है, के जदी साधक एक वस्तु मे दृष्टा रो भान नी भूले, तो पछे वणी रे अश्यो अभ्यास व्हे'जाय है, के छोटा शूँ म्होटा तक कठे ही नी भूले, ने यो ही अठा वठा री तृष्णा शूँ रहित वैराग है, के वणी रो मन दृश्य ने देख ने भी मायने उलटतो रे' जदी जाणणो, के अबे मन पे अधिकार जमवा लाग गयो।

४—यूँ ३९ मा में किया माफिक ध्यान करतां आय जाय जदी मन ने ठे'र वारी-हरकगी जगा' ठे'रवा-री तक (अवसर) मिलती

जाय, भागना छोड वहीं ठहरने लग जाय तव समझना चाहिये कि अब चित्त को ठहरने की आदत पड़ गई है अर्थात् अब एक-तत्वाभ्यास (एकाग्र) करने की आवश्यक्ता नहीं रही।

रेवे। जणी शूँ मतत साधन **"यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र-समाधयः"** व्हे'तो रे'वे। क्यूँके अभिमत रे सिवाय तो यो ध्यान करे ही नी है। अनिष्ट रे साथे भी इष्ट तो नी'ज छूटे, ने इष्ट तो सब में आनन्द हीज है। अबे तो छोटा शूँ छोटा, ने बडा शूँ बडा तक जठे मन जाय वठे ही वो'रो वो ही **"जुग अंगुल कर अंतर, हराम भज हि मोहि नात"** व्हेवा शूँ मन आधीन व्हे' जाय। मन रो चचळ स्वभाव छूट स्थिर स्वभाव व्हे'जाय। यो अभ्यास शूँ व्हे', ने अठा तक ही अभ्यास रे'। पछे तो अभ्यास नी पण स्वभाव पड जाय है।

—०❀०—

सू०—क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहण-ग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥४१॥

१—मन री तरगाँ मिटवा पे मन निरवाळस (दर्पण सिलोर) स्फटिक मणि जश्यो व्हे'जाय है। जदी वो अहंकार इन्द्रिया और बा'रली चीजाँ जणी में लागे, वणी सरीखो ही वो व्हे'जाय है। अणी तरे' री मन री हालत ने समापत्ति के' है।

---

(७) प्र०—एक तत्वाभ्यास (एकाग्रता का अभ्यास) हो जाने पर सम्प्रज्ञात समाधि किस क्रम से होती है?

उ०—हे सौम्य! जिस चीज की वृत्तियें ठहरने लग जाती हैं वह चित्त निर्मल स्थिर दर्पणवत् हो जाता है अर्थात् उसकी चञ्चलता घट जाने से वह पदार्थाकार (पदार्थ जैसा) होकर

२—यूं आधीन व्हेवा लागवा रा स्वभाव पे'ली, मन हरे'क चीज रा चलको (प्रकाश) वणी चीज शूँ न्यारो व्हे', ने ले' तो हो, पण आधीन व्हिया केडे वणाँ चीजाँ शूँ मिलने वणाँ रो चलको लेवा लाग जाय है। जणाँ रा चलका मन मे पडे अर्थात् ज्ञान व्हे'है, वी चीजाँ ई है,—दीखे जी (म्होटी चीजाँ), जणी शूँ दीखे जी (इद्रियाँ), जीं ने दीखे ज्यो (म्हू पणो), साफ काच 'सरीखो व्हियो थको मन अणा में तदाकार व्हे'जाय है। यो मन रो ठीक हिसाब पे आय जाणो है, (अणी ने हीज समापत्ति भी के' है)।

३—अतरी देर मन रा शोधन रा उपाय के'ने पछे शोधन व्हिया मन री हालत अणी सूत्र शूँ आज्ञा करे है, के मन, ने मन री तरगाँ एक व्हेवा पे भी न्यारी है, ज्यूँ लोडा पे कीट न्यारो, ने भेळो है। अणी कीटरूपी तरगाँ रे मिटवा पे मन निर्मळ काच ज्यू वा विना ले'रा रा तळाव ज्यू साफ रे'जाय है। पछे वणी मे हरे'क चीज साफ (स्पष्ट) दीखवा लाग जाय है, चावे छोटी व्हो'वा म्होटी, ने अशी साफ हालत ने समापत्ति के'है। अर्थात् जदी पे'ली कह्या माफिक दृष्टार्पण व्हे'जाय है। जणाँ रा

लगता है। इसी का नाम संप्रज्ञात समाधि वा समापत्ति है—चित्त का स्थूल दिखना, सूक्ष्म इन्द्रियों के आकार दिखना और अहकार के जैसा दिखना यह इस समापत्ति के भेद है।

(नोट) जिस चित्त की वृत्तियें क्षीण हो जाती हैं—कमजोर हो जाती है—ठहरने की आदतवाली हो जाती है अर्थात् चित्त पगु हो जाता है, तब यह चित्त साफ दर्पण के जैसा हो जाता है। वृत्तियों की चञ्चलता ही चित्तदर्पण में मलिनता थी और उनका ठहर जाना ही निर्मलता है, प्रत्येक वस्तु के तदाकार चित्त होता रहता है, परन्तु जब थिर होकर स्पष्ट

ऊपरे अनेक उपाय वताया है। चित्त री वृत्तियाँ चित्त मे बैठ जाय है। ज्यू तरगाँ पाणी में ठेर जाय है, यू वृत्तियाँ रे ममटवा री हालत रो नाम समापत्ति वाजे है। अवे या वात आइ, के यू शुद्ध चित्त शू लाभ कई? अणी पे के' के अस्यो मन चावे तो (ज्ञान ग्रहीता) अहकार पे लागे तो अहकार शू भी मिल जाय है अथवा इन्द्रियाँ (शब्द ग्रहण) मे लागे तो वस्यो ही वण रे', ने पदार्थ (अर्थग्राह्य) मे लागवा शूँ वशी ही वस्तु वण जाय है, के अणी शूँ लाभ कई दूज्यू ही मन तदाकार व्हिया विना तो कोई चीज दीखे ही नी, जदी साधन शू शुद्ध मन तदाकार–पदार्थाकार व्हे'जाय है। अणी मे कई वत्ताई व्ही', अणी रो यो मतलव है, के विना शोधन कीधो मन पदार्थाकार व्हे', ने पाछो वो ही मन पदार्थ रो नाम लेवा लागे, ने घणो झट झट पदार्थ रो आकार ने फेर वणी रो भान करावे है। ज्यू पडा (ग्वेल) करती वगत टडी घडी घटी री ऊँची नीची फुरती शूँ व्हे' ती रे'। यू ही मन भी झट झट पदार्थाकार व्हे'तो रे', ने या हीज मन री अशुद्धता है ।ने अणी'ज शूँ मन खुद ही दृश्य व्हेवा पे भी दृष्टा रो दावो करतो रेवे, ने अणी शूँ दुख पावे। पण यो शोधन व्हियो थको।मन हरे क

उस वस्तु के समान होने लगता है तब उसे समापत्ति अर्थात् समाधि कहते हैं। यह स्थिरता जितनी अधिक हो वह उतनी ही ऊँची समाधि समझनी चाहिये। इस प्रकार के चित्त के ये तीन भेद हैं—बाहिर की वस्तुओं के इन्द्रियों के और अहंकार के आकार का होना। प्रथम पाद के सत्रहवें सूत्र मे सम्प्रज्ञात समाधि कही गई उसी के ये तीन प्रकार कहे हैं। समापत्ति में चित्त पदार्थाकार होकर निकलता है, वसे चित्त और पदार्थ अलग [illegible] हैं।

चीज शूँ मिल जाय, जदी वास्तविक दृष्टा ही दृष्टा व्हे'ने मन दृश्य व्हे'ने रे'वा लाग जाय, जणी पे कि'यो है के—

"देखूँ देखूँ छोडने दीखूँ दीखूँ ठाण।
ई दीखूँ रो दीखणो ऊद्या अलख पिछाण॥"

अलख पच्चीसी

अणी शूँ सूत्र में आज्ञा कीधी के अहं, इंद्रियाँ, ने विषय चावे जणी रो ही आकार व्हे'ने रे'वा लाग जाय वा समापत्ति बाजे है।

४—यू जदी चित्त व्हे जाय जदी क्षीण-वृत्ति रो चित्त बाजे, ज्यूँ विना पाँख रो पखेरू पड्यो रे'वे। वणी वगत मन शुद्ध मणि री नाई निर्मळ व्हे'जाय, यो ही अणी रो साचो स्वभाव है। वृत्तिया तो अविद्या शूँ ही। अबे तो ग्रहण करवा वाळो अहं, विषय, इन्द्रियाँ जणी मे चित्त लागे वणी'ज रो आकार व्हे', ने वश्यो ही रंग व्हे', ने वठा शूँ डगे ही नी। डगे तो जदी, के वृत्ति चंचलता क्षीण नी व्हे'तो वा व्हे'ती। अबे अणी दशा रो नाम समापत्ति समझणो के ठीक हिसाब पे आयो। अणी री चचळता ही रो उपद्रव हो, अबे तो है ज्यो ही व्हे'रियो है।

सू०—तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा-सवितर्का समापत्तिः ॥४२॥

१—वणी समापत्ति मे शब्द (ग्रहण) अर्थ (ग्राह्य) ज्ञान (ग्रहीता) रा विकल्प मिल्या व्हे'तो वा सवितर्का समापत्ति बाजे है।

(*) प्र०—हे भगवन्! प्रथम मुझे यह समझाइये कि स्थूल पदार्थ के

२—पे'लो पे'लो थो मन नाम, नामवाळो, ने वणी रो विचार, अणाँ तीनाँ रो ही भेळो ही चलको ले'है (अणी ने सवितर्का समापत्ति के'है) या अणी रे सुधार री पे'ली दशा है।

३—अणी रे पे'ली रा ४१ मा सूत्र शूँ समापत्ति कणी ने के' है या बात बताई। अबे वणी समापत्ति रा भेद बतावे है, के-वा समापत्ति दो तरे'री व्हे'है—एक ने सवितर्का, ने दूसरी ने निर्वितर्का के'वे है। सवितर्का वणी ने के'वे, के-मन तदाकार तो व्हे'जाय, पण शब्द (ग्रहण) अर्थ (ग्राह्य) ज्ञान (गृहीता) अणाँ तीनाँ रा ही विकल्प वणी मे मिल्या थका व्हे' अर्थात मन अणा तीन ही विकल्पाँ ने लीधाँ थकाँ जो तदाकार व्हे' जाय वा सवितर्का समापत्ति वाजे है। ज्यूँ-घोडो, अणी मे मन तदाकार व्हियो, तो वणी वगत तीन वाताँ मिली थकी है। वणाँ मे मन तदाकार व्हियो। ज्यू-घोडो अश्यो नाम (शब्द), ने ठाण मे बध्यो खुरो-वाळो जनावर (अर्थ), ने वणी रो ई तीन वाताँ शामिल ही ले'ने मन तदाकार व्हियो, ने अणी तरे' शूँ सारा ही रो मन तदाकार हरे'क वस्तु मे व्हे' है। भेद अतरो ही है के थिरता लीधाँ थकाँ, ने आगत लीधाँ थको शोधन कीधो। मन थिरता लीधाँ थको व्हे' है, जी शूँ ही वणी ने समापत्ति के'वे है। परन्तु या विकल्पवाळी व्हेवा शूँ पे'ला (नीचा) दर्जा री है। क्यूं के

आकार चित्त कैसे दिखता है और इस हालत को क्या कहते हैं ?

२०—जिसमे शब्द, शब्द का अर्थ और शब्द का ज्ञान ये तीनो कल्पना मिली हुई होवे और चित्त ठहर जावे (इन तीनो जैसा मालूम होवे) तो उसे सवितर्का समापत्ति (समाधि)

विकल्प तो वो वाजे है, के (९मा सूत्र में) जणी में खाली शब्द (नाम) हीज व्हे'जणी रो अर्थ देखो तो कई नी लाधे, ने जाणे कईक अर्थ व्हे' ज्यूं जणाय ज्यू—"**सूरजपुर संध्या करे, वंध्या सुत रो वंश ॥**" यू ही घोडो, अश्व, तुरंग, ई केवल शब्द है, अणाँ रो अर्थ जाणे कईक वस्तु न्यारी व्हे' ज्यू जणाय, ने वो पायगाँ में वध्यो है, यू भी देखे, ने आपाँ वणी ने ओळख लीधो, यू भी जणाय। जणी वगत चावे जणी चीज रो चावे, जो ही नाम लो, ने चावे, जो ही देखो, शुणो, वा चावे, जो ही विचारो वणी मे ई तीन ही वाताँ मिली थकी रे'गा, ने ई रे'गा वठे तर्क अर्थात हेरफेर भी व्हे'गा। अणी तरे' शूँ आत्मा-ब्रह्म रो मनन भी सवितर्क व्हे', ने वणी में भी ई तीन ही विकल्प लागा रे'है, ने जतरे यथार्थ ज्ञान भी नी व्हे'। फेर अणी रो खुलाशो आगे आवे है। सूत्रकार एकतत्वाभ्यास कियो, वणी रो ही खुलाशो कर रि'या है अर्थात् वणी री विधि ने वणी री वारीकी दर्जा, ने सिद्धान्त समझाय रिया है, के एक तत्वाभ्यास यू व्हे'है।

४—वणी समापत्तिरा भी दो भेद है—सवितर्का, ने निर्वितर्का। जणी मे शब्द, अर्थ, ने ज्ञान रा विकल्प मिल्या रेवे, ने अणाँ में मन रँग्यो रेवे, वा सवितर्का वाजे है। ।(विकल्प रो लक्षण ९ मा सूत्र मे कियो है) क्यूके—विकल्प रेवा शूँ सवितर्क रे'वे हीज, पण

कहते हैं। यह निर्वितर्का से नीचे दर्जे की है, इसमें ही स्थूल हृदय की एकाग्रता समझो।

(नोट) नाम, पदार्थ और उसकी समझ मिली हुई रहने पर चित्त का दिखना, स्थूल पदार्थ के आकार चित्त का दिखना है। उसको सवितर्का समापत्ति भी कहते हैं।

वठे ही रगाव शूँ समापत्ति भी व्हीहीज। अणी शूँ वितर्क मेली ठंग. वीं हालत ने सवितर्का समापत्ति के'वे है। सूत्र १७ मों में चार सम्प्रज्ञात समाधि में पे'ली वितर्कवाळी चञ्चलता वाळी समाधि की है. वणी रो ही यो स्पष्ट है।

—०❀❀०—

सू०—स्मृतिपरिशुद्धौस्वरूपशून्ये वाऽर्थमात्र-निर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥

१—याद शुद्ध व्हे'जावा पे, केवल एक पदार्था-कार ही निकार रहती थकी निर्वितर्का समापत्ति वाजे है।

२—यूं तो वत्तो सुधर जाय, जदी अणी तीनों री न्यारा न्यारो ज्ञान व्हेवा लाग जाय, या वणी शूँ वत्ती है। अणी ने निर्वितर्का भी के' है।

—समापत्ति या के मन तदाकार (वणी पदार्थ र सरीखा) व्हे'जाय। वणी में शब्द, अर्थ, ने ज्ञान मिल्या थका र'व अर्थात अणी तीन वातां ने ले, ने तदाकार व्हे', वा सवितर्का समापत्ति वाजे। जणी में ई तीन वातां नी रे', केवल एक ही वात र' वा निर्वितर्का समापत्ति वाजे। ज्यूँ-घोड़ो या नाम पारगा.

---

(५) प्र०—इस तरह मैंने स्थूल (सवितर्का) समझ ली, अब इससे आगे की सूक्ष्म हालत का नाम और लक्षण समझाइये?

उ०—उपर्युक्त तीनों स्थूल विकल्पों से हटकर केवल सूक्ष्म पदार्थ मात्र की तदाकारता चित्त की रह जाती है, तब उसे निर्वि-

यो नाम, देख्यो यो नाम, ई तो तीन ही नाम ही व्हिया, ने नाम व्हिया, यो भी नाम हीज व्हियो, जदी जाणणो, के अवे या शुद्ध व्ही। क्यूँके अणी शुद्ध याद रे पे'ला अशुद्ध याद ही, अर्थात् एक गोटाळो हो। ज्यूँ—घोड़ो ठाण मे है, या म्हू जाणूँ हूँ, अणी वात ने न्यारी न्यारी करे'ने देखी जाय, तो गोटाळो वखरे, ने शोधवा शूँ ज्या हालत व्हे', वा शुद्ध याद "स्मृति शुद्धि" वाजे। क्यूँके गोटाळा री स्मृति अशुद्ध ही। वणी में वस्तु तो एक ही दृश्य है, ने दीखे, देखावे, ने देखे, अर्थ (ग्राह्य), शब्द (ग्रहण), ज्ञान (ग्रहीता), यूँ न्यारा व्हे'ज्यूँ जणाय, जदी'ज कियो है के—

> "काँकर के'वे मनख ने थूँ पण मूढ अजाण।
> आँपाँ री वाताँ शुणे उद्या अलख पिछाण॥"

अलख पचीसी

अणी हालत मे योगी रो अहंकार भी दृश्य (दीखवावाळो) व्हे जाय है। पण बिलकुल ही पड नी जाय है, पण जाणे पडग्या व्हे' ज्यूं भान व्हेवा लागजाय है। अणी हालत ने ही निर्वितर्का समापत्ति के'है अर्थात् दृष्टा, दृश्य रो सवितर्का वचे ही निर्वितर्का मे विशेष विभाग व्हे'जाय है, अर्थात् गोटाळो वखर गियो व्हे' जश्यो विभाग अणी में व्हे' है। वणी मे यो गोटाळो रे' ज्यूं दीखे ने अणी मे नी व्हे' ज्यूं दीखे। साधारण अशुद्धि मे गोटाळो हीज दीखे यो भेद है। भाव यो, के शब्द तो कोरो शब्द हीज व्हे'है। वणी मे अर्थ, ने ज्ञान नी व्हे'है। शब्द रे माथे अर्थ रे'तो व्हे, तो

तर्का समापत्ति कहते हैं। इस में चित्त की अधिक निर्मलता हो जाती है, जो कि सवितर्का का अभ्यास करते करते स्वत हो जाती है।

सू०—एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्म-विषया विख्याता ॥४४॥

१— यूँ ही मही चीजाँ री भी समापत्ति समझ लेणी, जणी ने सविचार निर्विचार के

२—यूँ मही चीजाँ रा मिल्या चलका ले', या बडी चीजाँ रा ले' जणी शूँ वत्ती बात है, ने अणी ने सविचारा समापत्ति के है। ने मही चीजाँ रा तीन ही न्यारा न्यारा चल का व्हे' तो या भी म्होटा रा न्यारा न्यारा ले'जणी शूँ वत्ती बात है, ने अणी ने हीज निर्विचारा समापत्ति भी के' है।

३—ज्यूँ कणी म्होटी चीज मे मन रो ठे'रणो सवितर्का वाजे, ने वणी रा शब्द, अर्थ, ज्ञान रो न्यारो विभाग व्हेवा पे निर्वितर्का समापत्ति वाजे है। यूँ ही चीज पे मन रो ठे'र जाणो, ज्यूँ समय, मन, विचार, बुद्धि आदि पे सविचार वाजे है, ने अणी रा भी नाम (शब्द), अर्थ, ने ज्ञान रो विभाग व्हे'जाणो, निर्विचारा समापत्ति वाजे है। सवितर्का ने निर्वितर्का मे म्होटी चीज

(*) प्र०—हे भगवन्! इन दोनों समापत्तियों से भी कोई ऊँचे दर्जे की समापत्ति होती है या नहीं?

उ०—स्थूल बात (विषय) लेकर चित्त की तदाकारता सवितर्का और निर्वितर्का कहाती है, और सूक्ष्म विषय में ये ही सविचारा और निर्विचारा कही जाती है। जितना सूक्ष्म विषय और जितनी शुद्धता अधिक हो, उतनी ही ऊँची दशा समझनी चाहिये।

है। क्यूंके म्होटी चीज मही शूँ मही चीज मे शूँ आवे है, ने वणी मे ही पाछी समाय जाय है। अणी रो विचार नाम, अर्थ, ज्ञान सहित कर तदाकारता व्हे'जाणो भी सविचारा है, ने अणी मे भी नाम, अर्थ, ज्ञान, अलग कर देखणो निर्विचारा है अर्थात् प्रकृति भी जदी दृश्य व्हे'ने दीखवा लाग जाय, अर्थात् सब शूँ मही भी है, या ही प्रकृति व्ही'ने जदी याही निर्विचारा समापत्ति शूँ दीखवा लाग जाय, जदी अणी रा विकार री तो वात ही कई।

४—वारी की (सूक्ष्मता) री हद ठेट प्रकृति तक है, यूँ एक शूँ एक स्थूल है, ने एक शूँ एक सूक्ष्म, पण अठे सूक्ष्म शूँ मतलब शब्दादि विकल्पादि सेती व्हे'ने वणाँ विकाराँ ने छोड ने-पच्चिसत्र रा चक्र पे बुद्धि चाल, ने चोईश तत्वाँ मे बुद्धि रमती रमती सूक्ष्म री कानी वधे, अणी ने सूक्ष्म विषय कियो। मिश्र पदार्थ, ने अविमिश्र पदार्थ। मिश्र पदार्थ विकार, ने अविमिश्र प्रकृति विकृति ने जाणणो चावे। यू प्रकृति मे मतो व्हे'णो सूक्ष्म विषयत्व गण्यो है। पण व्हे' अणी विधि शूँ।

(तन्मात्रा गधादि) सूक्ष्म है वैसे सब से सूक्ष्म विषय किसे समझना चाहिये ?

उ० सूक्ष्म विषय की अवधि शून्य पर्यन्त है अर्थात सब से सूक्ष्म विषय अव्यक्त (शून्य) है।

सू०—ता एव सबीज समाधिः ॥४६॥

१—ई हीज सबीज समाधि है।

२—पण अणी मही मे लागो रे', जतरे भी महासुख मे रूमर रे' जाय है (अणी ने सबीज समाधि के' है)।

३ - ई चार तरे' री जो पे'ली समापत्ति की' ई हीज सबीज समाधि वाजे है। क्यूँ के अणी मे चित्त अवश्य ही पदार्थ रे जश्यो व्हे'जाय है। चावे पदार्थ महासूक्ष्म व्हो' वा म्होटो, पण पदार्थ र आकार हीज मन व्हे'ने दीखवा लाग जाय, वा समापत्ति वाजे है। पण दीखे दीखे जतरेक देखवा भी मन लाग जाय है, न अणी रो (मनरो) देखवापणो हीज अनर्थ रो मूल है। या ही सबीजता है। यद्यपि समापत्ति मे मन रो देखवो, पदा री दृष्टी र हाथ रे अटकवा जतरो थोडो है, ने वणी वगत हाथ रो अट-काय नी व्हे' तो भी पे'ली रा वेग शूं, वा टाका ग्याय हीज है, ने पाछा हाथ लागजावा शूं ऊँचो टाको लागवालाग जाय है। यूँ ही अणी चार ही समापत्तियों रो हाल है, के मन ब्रह्म रा जोर शूं आपणी सत्ता (अस्तित्व) से आवे, ने फेर ब्रह्म रा जोर शूं देखवा रो दावो करवा लाग जाय। पण अठे एक बात याद राखवा री है, के चावे मन देखवा रो ही दावो करे, पण वारंवार वणी रो

(५) प्र०—हे भगवन् ! अब तो अव्यक्त (शून्या) कार होने की परम समाधि (समापत्ति) समझना चाहिये क्या ?

उ०—हे सौम्य ! शून्य (अव्यक्त) पर्यन्त जो समापत्तियें (समाधियें) कही गईं, वे ही सबीज हैं (फिर जन्म देने वाली हैं) इस-

दीखणो ही देखवा रा वणी रा भ्रम ने मिटावतो जाय है, ने पछे वणी रो देखवो भी दीखवा मे आवा लाग जाय है, ने यूँ क्रम क्रम शूँ वधवा रा ही नाम सवितर्का, निर्वितर्का, सविचारा, निर्विचारा व्हिया है। समापत्ति मे या विशेषता है, के वा भले ही सवीज ही व्हे', पण अणाँ मे शूँ नीचे नी उतराय है, यो ही ईश्वरप्रणिधान मे, ने दूसरा अभ्यासादि रा साधन मे भेद है। अन्य अभ्यास वैराग्य शूँ कठिनता शूँ ज्या सप्रज्ञात व्हे' जणी मे वगे ही पडवा रो (रुकवा रो) भव प्रत्यय रे' जाय है। पण या वात अणाँ समापत्तियाँ मे नी है—जी के एकतत्वाभ्यास शूँ व्हे' है ज्यूँ—

> ' निराकार भजे वीं ने, पडे मे'नत मोकळी।
> म्हारे मे मन देवाँ री, सवाँ री शुण अर्जुण ॥
> म्हूँ हरूं जन्म ने मोत, देरदार करूं नहीं।"

अणी मे अणां दो बीज समाधियों रा भेद वताया है। अणाँ ने सबीजा (बीजवाळी) यूँ की' के निर्बीज है, यो भी भान व्हे'गो बीज बीज है। क्यूँके अणी मे भी शब्द अर्थ, ज्ञान, गुप्त रूप शूँ बीज है।

४—वी बीज विषय सूक्ष्म व्हो'वा स्थूल, पण विष या करावे

लिये निर्बीज समाधि ही सब से श्रेष्ठ (परम समाधि) समझना चाहिये। इस निर्बीज को ही चैतन्य समाधि भी कहते है और इस शून्य समाधि को जड समाधि कहते है। क्योंकि इसमें उटना का (दृश्य का) बीज रह जाता है, समय पाकर इसके फिर उट आने का संदेह रह जाता है।

१—इसी को पातंजे भवप्रत्यय के नाम से कहा था

जदी पे'ली माफिक एकतत्व रो अभ्यास करताँ करताँ समापत्ति तक पो'च जाय, ने वणी मे भी निर्विकार समापत्ति सूक्ष्मविचार भी आत्मा रे दृश्य व्हे'ने दृष्टा व्हेवा रो दावो छोडवा लाग जाय, जदी जाणणो के अबे निर्विचारा समापत्ति री स्पष्टता व्हे'गई है। अणी हालत मे अबे जाणे आत्मा हीज स्वय आप दृष्टापण ने नी छोडवा पे दृढ व्हे'गयो व्हे' ज्यूँ व्हे'जाय है, अथवा जो तरग दृष्टा व्हेवा ने आवे वा ही दृश्य वण जाय. जाणे काळीनाग रा माथा पे भगवान् रो नृत्य व्हे'रियो है। नाग, काटवा ने फण उठावे उठावे जतरे तो भगवान् वणी पे ही चढ्या थका लाधे। श्री राधिकाजी रो प्रेम कृष्ण मे, ने श्रीकृष्ण रो प्रेम राधिकाजी मे व्हेवा पे भी अबे श्री राधिकाजी रो मान, ने श्रीकृष्ण भगवान रो मनावणो अध्यात्म प्रसाद वाजे है। अठा पे'ली री मे कईक कईक कोशिश रे'ती ही के दृष्टा मे सब है, पण अध्यात्मप्रसाद व्हेवा पे कोशिश ही छूट जाय, आपो आप ही दृष्टा मे पण व्हेवा लाग जाय। अणी ने के'वे है, निर्विचार री स्पष्टता और आत्मा (सम्बन्धी अध्यात्म) री कृपा वा प्रसाद वा प्रसन्नता।

४—जदी चार ही सवितर्का निर्वितर्का ने सविचारा निर्विचारा सबीज है तदी निर्बीज कंकर ने कशी व्ही ? जदी

निरभ्यास योगी प्राप्त कर लेता है, तब उसे भी भीतरी अनुभव मिलने लगता है। इसी को अध्यात्म प्रसाद कहते है। अर्थात निर्मल निर्विचार मे अध्यात्म प्रसाद मिलता है।

(नोट) नेता मेत्रानुक्रमार्थमत्समज्ञानज तम

नात्मयात्म्यासमात्वन्यो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

निर्विचार निर्मळ व्हे' तो माँय ने ही वणी रे मदद खुल जाय, जणी शूँ मलिनता रो बीज आपो आप ही नाश व्हेवा लाग जाय। या निर्मलता अतरी निर्मलता ज्यूँ नी है, पण खुद आपणी दृढ निर्मलता है, अणी शूँ एक साथे नवी नवी'ज वात जणाय जाय। जाणे घोर नींद में शूँ एक साथे ही जाग गिया। पण एक भी वात अणी री बणावटी नी व्हे' सब साच ने यथार्थ ही मूंडा आगे आवे। अणी रो नाम अध्यात्म प्रसाद यथार्थ ज्ञान—साचो साक्षात्कार है।

सू०—ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥४८॥

१—वणी हालत री बुद्धि ने ऋतंभरा के' है।

२—अणी मायली मदद शूँ साची हीज समझ व्हे'जाय है। (अणी ने ऋतंभरा के' है)।

३—यद्यपि आगे री हालत सद्गुरु ही जाणे, पण जतरो संकेत कराय वतरो तो करणो ही पड़े—समझाणो समझणो ही लागा। पण समापत्ति रो आरंभ कीधो, वठा शूँ ही अनुभव री नाट रा पगत्या शुरू व्हे गया। शब्द, अर्थ, ने ज्ञान रा तो पे'ला पगत्या शूँ ही अनादर व्हेवा लाग गयो पण सवितर्का ने समझ्या पछे निर्वितर्का री वात अनुभव में आय जायगा, ने पछे

---

(५) प्र०—हे भगवन्! अध्यात्मप्रसाद होने पर फिर क्या हालत होती है?

सविचारा ने निर्विचारा भी अणाँ रा ही बारीक भेद है, या देख लेगा। पछे निर्विचारा मे अत्यन्त स्पष्टता शूँ अध्यात्मप्रसाद रो अनुभव व्हेवा लाग जायगा। वठे वो अनुभव कश्योक व्हे'तो व्हे'गा, अणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के वणी अनुभव रो नाम है ऋतंभरा। ठीक है, शब्द री गति नी व्हे' वठे भी कई तो के'णो पडे हाँ, पण शब्द रो एक खोटो स्वभाव यो है, के अनुभव ने ढँक जावे। वणी शब्द री चसक शूँ भाँप ले', ने दूजा पाछा उतर जाय। वी जाणे ऋतंभरा भी अतरी कीड्याँ री नांई दर मे घुमती व्हे'गा, परन्तु ऋतभरा कीड्याँ मायली कीड्याँ नी है, पण या हवा है, ज्या कीड्या सेथी दरने उडाय दे' है। ऋतभरा साँच ने ही ज जठे स्थान है। झूठ रो सस्कार भी नी व्हे' वणी अनुभव ने ऋतभरा के' है।

४—अणी बुद्धि रो नाम ऋतंभरा है। ऋतभरा व्हेवा शूँ, अणी मे झूठ रो लेश ही नी र'वे है, अशी बुद्धि या हीज है और नी है। या योग मे निर्विचार री भी फेर निर्मलता व्हे' जदी व्हे' है। अणी वास्ते योगी अभ्यास करे', वी हीज अणी ने यूँ जाणे है, और कोई अणी री चर्चा करे वो जाणे आँधो भडयँटा खावे, यूँ समझणा चावे। या तो योग रा पर री हीज निज वात है।

४८—इससे ऋतम्भरा नाम की बुद्धि प्राप्त होती है (सत्य को धारण करने को ऋतम्भरा कहते हैं।)

(४८) तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥१॥

सू०—श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥४९॥

१—शुणवा रा अंदाजा रा अनुभव शूँ भी अधिक यो अनुभव है. अधिक कई, अन्य ही।

२—वा साची समझ (ऋतभरा) अवार री अणी समझ में आय ही नी शके, वणी रो अठोटो बध शके। क्यूँके वा तो बात री ओर है. ने अणी शूँ वत्ती है।

३—भगवान सूत्रकार नाळ ने तें'कर चानणी पे आय गया है अर्थात लाग लपेट छोड दीधी है। ऋतभरा रो खुलासो करवा री दया करे है और उचित भी है। क्यूँके सूत्रकार योग वे'ग्या है, ने योग ही अणी रो खुलासो नी करे, तो कई पडनल जीभ्या जीरी वाळा करेगा? जो सूत्रकार रे साथे साथे बरोबर पगल्या चढने चानणी पे पहुँच गयो, वणी रे तो मे'ज में ही यो प्रत्यक्ष ही है. ने नीचे है. वो तो समझ ही कँवार सके। पण अठे यो मतलब है के जो एक पगल्या ही नीचे है वो अणी बात रो अधिकारी है ने यूँ ही योग सब अधिकारियों ने यथाक्रम आगे आगे चढाय रियो है। अबे आपणो विचार ने अठे गिना सके है, घणो ने घबराया (विदा किया) जाय है। विचार दशो ने

---

(५) प्र०—ऋतभरा बुद्धि किसे कहते हैं?

उ०—सुनी और अंदाज की हुई उत्तम वस्तु से जो भिन्न अधिक और अन्य वस्तु को कह बुद्धि बताती है।

ऋतभरा कशी ऊँची हालत व्हे'ती व्हे'गा, वठे कई सुख व्हे'गा, देखाँ भागवतजी मे वठा रो हाल व्हे'गा, वा वेद पुराण कणी पोथी मे नी तो कणी महात्मा ने पूछ्या, जी अणी वात ने जाणता व्हे', वणाँ शू वाकब व्हे'जावा। सूत्रकार आज्ञा करे के यूँ नी'। चावे जतरो शुणलो, ने अदाज वाँधलो, पण या तो न्यारी'ज है, ने सब शू अधिक है, ने अनोखी है। अणी शूँ ई ने प्रत्यक्ष करो नदी ज जाण शकोगा। विना अनुभव तो ससारी वात रो भी अदाज नी वधे, जदी सब शूँ अधिक, ने अनोखी यू कूँकर जणाय शके। जो थे म्हारा के'वा माफिक आय रिया हो तो समझ रिया हो, ने नी तो भूल्या जठा शू ही गणो, कई अटकाव है, शूधी वात, ने महालाभ है। कोडी कोडी रे वास्ते विचार करो तो थोडो थोडो अणी रो भी विचार करो, आप शू आप वधता जाओगा। विचार री तरज तो म्हे वताय दिया हा। अवे थाणे ही हाथे है। [illegible] री [illegible] री वस्तु थे ही भूलो, ने वतावा पे भी नी हेरो, [illegible] वणा ने भी सुझावो तो थाँणी मुरजी, म्हूँतो बरावर अगर प्रकाश ले'ने कवा हूं, मन व्हे' जदी ही हेर लो, जाणे यू भगवान [illegible] आज्ञा कर रिया है।

५—क्यूँ के [illegible] रा अठोटा, गुणी वातां, अणी माची [illegible] समझ र [illegible] पण हा नी शके। पे'ली तो मनख र विचारवा री शक्ति हीन मूल शू शुभवान व्हे'है, ने व[illegible] मे फेर एक पे एक वधतो जाय है। अने अ [illegible] मे [illegible] असम्भव व्हे' ज्यू अणी ऋतम्भरा प्रकाश विना अ[illegible] हीन है, ने "अंधेनैव नीयमाना

यथान्था" व्हे'ता ही रे'है । अणी वास्ते योगानुसार शांति धीरप शूँ चाले तो निर्विचार री फेर निर्मळता व्हे'ने परम पद ने मे'ल में ही पाय जाय । पण या बात यूँ नी, विशेषता है या नी भूलणी । दूज्यूँ अठा रो बीज रे' जायगा ।

सू०-तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥५०॥

१—ऋतंभरा रो संस्कार (अनुभव) दूसरा सब अनुभवों रो बाधक है ॥

२—वणी शूँ ई म्हारा विचार रुक जाय है, ने वणी रा ही वणी रा विचार रे' जाय है ।

३—अठे कोई के'वे के अशी उत्तम हालत है पण पाछी यठा शूँ उतराय जातो व्हे'गा । अणी पे सूत्रकार आज्ञा करे के ऋतंभरा रो अनुभव दूसरा अनुभव ने आवा ही नी दे', सतत ऋतंभरा रो अनुभव जाग्रत ही रे' । दूसरा संस्कार रो आवणो ही उतरणो है, पण अठे तो वड़ा शूँ वड़ा ने उत्तम शूँ उत्तम अनुभवों ने शिक्षा मिल गई है अठे तो—

---

(५) प्र० – हे भगवन् ! इस अलौकिक ऋतंभरा बुद्धि से जो देखने सुनने तथा अनुमान में भी नहीं आ सकता ऐसा उत्तम सुख (अनुभव) वहां पहुंचने वाले को ही होता है यह मैंने समझ लिया । अब इसके बाद क्या हालत होता है सो आज्ञा कीजिये ?

"जगी लाभ वचे वत्तो, और लाभ गणे नहीं।
जणी ने पाय ने म्होटा, दुख शूँ भी डगे नहीं॥"

श्रीगीताजी

गी हालत व्हे'गई है। कई सूर्यनारायण ने यो विचार व्हे'के यानी व्हे'जा अंधारा मे ठाकर खाय जाऊ,। अणी पे एक वात है, के एक परणी छोरी वगी री शानी री कुआरीछोरियाँ शूँ वणी रा अनुभव गी वाताँ कर री'ही। बिचारया वी भी आपणी बुद्धि माफिक वणाँ वाताँ ने समझवा री कोशीश कर री' ही। वणी ने तो या भी के' दीनी के, म्हारे एक छोरा भी व्हे'गयो हो, पण यो म्हारी रात गे किग्यो, वणी वगत म्हारी नणद जागती ही म्हें तो शायद ही मो छोरो कूँकर व्हे' है, यो तो नणद ने पूछ्या शूँ खबर पड़ेगा। जदी एक अनुभवी लुगाई बोली के बेटी और ता बात ठीक है, पण नींद मे छोरा नी जणाय है, ने पूछवा शूँ ना, पण जणे जी ने हीज खबर पड़े है, दूजा ने नी, यूँही जाण मारी जाणे है, के वटा शूँ उतराय है, के नी', ने वा वणी हालत है—

जाणे मा ही जाण मी, या अण जाणी जाण।
[illegible] लाग मी, ज्या अलख पिछाण॥

अलखपचीसी

४—अणी अध्यात्मप्रसाद री ऋतभरा मे भी सस्कार कस्या नी थोडा ही रे' है। सस्कार नी रे' जदी तो कई नी व्हियो, पण वी सस्कार सत्य (ऋतभरा) रा रे' है। अणी वास्ते अणॉ, ने वणॉ सस्कारॉ मे नरोई भेद है—पूरब पच्छिम रो भेद है। अणॉ शूँ सस्कार वीज मिटे, ने वणॉ पे'ली रा (अविद्या रा) शूँ सस्कार दिन दूणॉ ने रात चौगणा व्हे'ता जाय अर्थात एक वीज-पणो मिटावे, ने दूजो सामो वधावे, यो ही ऋतभरा, ने दूसरा सस्कारॉ रो भेद है, सॉच झूठ रो फेर अणी योग ससार रो अतरो है।

सू०—तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्वीजः समाधिः ॥५१॥

१—अणी री भी रोक व्हेवा शूँ पछे रोक री हीज रोक व्हे जाई। अणी रो हीज नाम निर्वीज समाधि है।

२—ने पछे वणी रा भी विचार रुक ने अखंड महासुख व्हे' जाय है. अणी ने ही निर्वीज समाधि, सर्ववृत्ति निरोध (सब तरगॉ रा ठे'र जाणो) देखे, जी रो दीखे जी शूँ बिलकुल अलग व्हे जाणो, ने कैवल्य आदि अनेक नाम शूँ के' है। पछे कई पर वाकी नी रे' है।

---

(५) प्र०—हे प्रभो! जब इस प्रकार ऋतभरा के सस्कार के सामने दूसरे सस्कार परास्त हो जावें तब ही निर्वीज समाधि होती है क्या?

उ०—हे वित्स! एक दूसरे सस्कारों का नाश निरोध भी नहीं रहता तब इस ऋतभरा का सस्कार भी मिट कर निर्वीज

३—सूत्रकार आज्ञा करे के सब ही संस्कार (अनुभवाँ) री रोक करवा वालो अनोखो ऋतभरा रो अनुभव है। वणी अनुभव रे मूँडा आगे दूसरा अनुभव आय ही नी शके। केवल एक तो ऋतभरा रो अनुभव हीज जोड़ाँ, कई आवता, ने व्हिया, ने व्हे' रिया, सब अनुभवाँ ने रोक दे' है। पण अणी वात शूँ या वात पड़े व्हा के दूसरा अनुभव ना संस्कार भी रे' जरूर है। क्यूके [illegible] [illegible] नो रोके कणी ने। अणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के [illegible] [illegible] [illegible] रो अनुभव है. अणी री भी रोक व्हे'जाय है [illegible] कोई खजाना पे चोर ने रोकवा ने पे'रो लागे, पण चोर रो [illegible] निशाण ही नी व्हे'जठे पे'रो कणी रो लागे, वठे [illegible] [illegible] [illegible] है। जदीं'ज श्रीकृष्ण भगवान कई शास्त्र [illegible] [illegible] [illegible] चैन री बंशी बाजे है अणी वास्ते ही भगवान [illegible] —

प्रज्ञात में कियो, वो एक ही है, पण वणी मे रस्ता री कठिनता बताय, अणी मे तीव्र संवेग री झट ही प्राप्ति, ने ईश्वर प्रणिधान शूँ सब शूँ शीघ्र प्राप्ति कूँकर व्हे' है ज्या बताई है। जो कोई के'व के अणी में भी छोटी दीखे तो वणी मे विचारणो चावे, के ईश्वर प्रणिधान एकतत्वाभ्यास शूँ बचे कई कई वार्ता आवे है वी बताई है, जी शूँ छोटी व्हे' ज्यूँ दीखे है, पण कियो केवल एकतत्वाभ्यास हीज है, जो के हर 'हालत मे आयो, ईश्वर मे अर्पण व्हे'तो रे'णो है, ने यो ही सुगम ने उत्तम शीघ्र प्राप्ति रो मार्ग है।

४—ऋतंभरा रा संस्कार झूठ ने तो फरकवा ही नीं दे'। केवल साच ही—असली साच ने हीज ऊंधो थका व्हे', पण साच रा संस्कार भी झूठ ने साबित करे है, वो साच रो संस्कार भी निरोध व्हे' जाय, ने सब वृत्ति निरोध नाम री निर्बीज समाधि व्हे' जाय अर्थात् वणी योगी रा मन मे शूँ झूठ भी जो' है, अणी संस्कार मिट जाणो ही निर्बीज समाधि वाजे है। लेश मात्र भी अन्यथा विचार री जड नी रे'णो ही निर्बीजता है। विचार नीं रे'णा निर्बीजता नी है, पण अविद्या रो लेश संस्कार नी रे'णो ही योग है।

[यो योग शास्त्र रो समाधि पाद समाप्त हुवो।]

—०:०—

प्रथम पाद का उपसंहार

(खुलासा)

—※—

हे भगवन् ! दयानिधान !! आपने मुझ पर दया कर परमानन्द की प्राप्ति और सम्पूर्ण दुःखों की बिलकुल निवृत्ति के लिये (सूत्र १, २ में) योग शास्त्र समझाया कि सब वृत्तियों के रुकने से द्रष्टा (सूत्र ३ में) (देखने वाला) अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है, यही योग है और फिर अपनी उन वृत्तियों के (सूत्र ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० ११ में) नाम और लक्षण कह उनके रोकने के लिये अभ्यास (सूत्र १२, १३ में), वैराग्य के लक्षण और फिर दोनों (अभ्यास वैराग्य) की (सूत्र १४, १५, १६ में) अवधि कह कर इन से होने वाली प्रथम संप्रज्ञात समाधि के (सूत्र १७ में) चार भेद कहे। फिर पूर्ण अभ्यास वैराग्य से होने वाली (सूत्र १८ में) असंप्रज्ञात समाधि कह कर इस असंप्रज्ञात को न पाकर योग भ्रष्ट होने वालों का (सूत्र १९ में) फिर जन्म होना कह कर और इसे न पाने वालों के (सू०-२०, २१ में) श्रद्धादि उपाय [illegible] (सूत्र २३ २४, २५, २६ में) मन्द, मध्य तीव्र [illegible] सबसे उत्कृष्ट शीघ्र प्राप्ति का उपाय (सूत्र-२३ में) ईश्वर प्रणिधान को कहा। इसमें ईश्वर के स्वरूप और (सूत्र-२४ [illegible] उसका स्मरण जप कह कर उस से होने वाले फल (विघ्नों की निवृत्ति (सूत्र-२९ में) बतलाई। फिर विघ्नों के बढ़े हुये उपद्रव

दुःखादि की (सूत्र-३० में) निवृत्ति के लिये एकाग्रता का अभ्यास करना कहा। फिर (सूत्र ३१, ३२ मे) उस एकाग्रता के लिये सात उपाय बताकर (सूत्र-३३ से ३९ तक में) स्थिर चित्त का लक्षण और उसके भेद कहे। फिर (सूत्र-४०, ४१, ४२, ४३ मे) सम्प्रज्ञात के सवितर्कादि चारों विभागो का कथन किया और इन चारो से (सूत्र-४४ में) सूक्ष्म भव प्रत्यय को भी बीज सहित होने से सबीज (सूत्र-४५, ४६ में बाहर की वस्तु को लिये हुए) कही। फिर निर्बीज को कहने के लिये (सूत्र-४७, ४८, ४९ मे) निर्मल निर्विचार से अध्यात्म प्रसाद (अन्तरीय अनुभव) कहा और उस से प्राप्त होने वाली ऋतभरा बुद्धि (सूत्र ५० मे) कह उस ऋतंभरा से सम्पूर्ण संस्कारो (विचारो) का अत्यन्त लय कह कर द्रष्टा के स्वरूपावस्थान रूप निर्बीज (सूत्र-५१ मे) समाधि बताई। इसका तात्पर्य मेरी समझ मे यह आया कि द्रष्टा का स्वरूप मे अवस्थान (वृत्तियो से पृथक्ता जो कि वृत्तियो का द्रष्टा होने से स्वाभाविक ही है) ही सब वृत्तियो का निरोध है और या निरोध किस प्रकार होता है उसका अधिकारी भेद से भी आपने यह सब विवरण किया है॥



पातञ्जल दर्शन

द्वितीय साधन पाद

सू०—तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥१॥

१—तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, अणाँ ने क्रियायोग के' है ।

२—ईश्वर रे वास्ते खमणो, वणी रो विचार करता रे'णो, ने वणी रो आशरो लेणो, ई काम महासुख पावा रे वास्ते कीदा जाय है। याँ तीणाँ ने ही तप, स्वाध्याय, ने ईश्वर प्रणिधान भी के' है। याँ रो भेळो ही नाम क्रियायोग है।

३—अबे सूत्रकार जी पे'ला समाधि पाद मे कि'या थका

---

* प्र०—हे गुरो ! आपने अब तक जो योग की समालोचना की वह ऊँचे अधिकारी स्थिरचित्त वाले ही के उपयोगी है। क्योंकि उसमें सब साधन मन ही पर निर्भर हैं। परन्तु जिसका मन इस योग्य नहीं होने पर भी जो जिज्ञासु गुरुवाक्य पर विश्वास

उपायों ने नी समझ शके, अथवा नी कर शके, वणाँ पे कृपा कर यो दूसरो साधन पाद आरंभ करे है—जो सेंज मे ही प्राप्त के' शके-वो उपाय पे'लाँ ही के' दियो, पण ज्यूँ चड़कली (चिड़िया) पाँखड़ा ऊगवा पे बचा ने उड़णो शिखावे है, जदी पे'ली ऊपरली डाळी पर बैठ ने बोले। पण जदी अतरी शक्ति बचा री नी दीखे तो पाछी वणी रे नजी'क री डाळी पे आय जावे है। यूँ ही कमजोर योग रा अभिलाषियों रे वास्ते ठेट सूं पाछो योग रा वर्णन रो यो दूसरो पाद है। अठे यो भाव है, क समाधि पाद रा अभिलाषी तो विरला ही पुरुष है। बाकी सब ही अणी पाद रा अधिकारी है। जतरा मत धर्मों में उपाय बताया गया है, वी सब ई'ज है वा अणी रा रूपान्तर है अर्थात् ई दूसरा पाद ने मनुष्यमात्र रा धर्म हीज समझणो चावे। जो अणी पे नी चाले वो मनख ही नी है। जणी मे अणी साधनां री जतरी कमी है, वणी मे वतरी ही मनखपणां री कमी है। अणी वास्ते मनख मात्र ने चावे के वो अणी पे चाले। मनख जन्म लीधो, ने वो अणी धर्मों रो अधिकारी होगयो। जो यां नी चाले तो राक्षस वा पशु है। तप—के' है—सारा धरवाने। स्वाध्याय के' है—मोक्ष री विधि रा शास्त्र ने। ईश्वर प्रणिधान वे' है—पसंद नी' करवा ने। सार अणी रो यो निश्चय व मोक्ष

रख कर गुरु के कहने अनुसार करने को तैय्यार है उसके लिये परम आनन्द पाने का क्या उपाय है।

उत्तर—हे वत्स, ऐसे अधिकारी को क्रिया योग करना चाहिये। तप (सहन करना) स्वध्याय (प्रणव आदि का जपना) और (मोक्ष शास्त्र का मनन) और ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर के सब कर्मों के

री विधि रो शास्त्रानुसार सहन करणो, घमड नी करणो। अणाँ तपाँ रो वर्णन गीताजी मे आवे हीज है, के तीन तरे' रा तप है, ने फेर वर्गाँ रा तीन प्रकार है, ने **'करणो'** शास्त्र के' वे सो, ने **'ॐ तत् सत् यो कह्यो नाम' ने "म्हारे ही आशरे कर्म शघला ही करतो थको।'** आज कल तप, दु:ख देवा ने हीज समझ लीधो है। स्वाध्याय, माळा रा मण्या गुड़कावणो नाम राख्यो है, के'क एक आध पाठ मूडा शूँ कर लेणो, ने ईश्वर प्रणिधान रो यो भाव समझ लीधो है, के 'राम करे ज्यो व्हे' है', यूँ कर हाथ पे हाथ मेल बेठा रे'णो। सूत्रकार रो जो अभिप्राय है, वो गीताजी रा श्लोक शूँ स्पष्ट व्हे' है। श्री भगवान पतजलि हस री नाँई है, जो पक्षियाँ मे भी उत्तम समझ्यो जाय है, ने आकाशगामी व्हेवा पे भी पृथ्वी पे चालवा लागे, तो भी वणी री चाल री प्रशंसा व्हे'। पाणी मे नी भींजे और तरतो भी रुपाळो लागे, ने चमकी लगाय ने मोती निकाळ लावे, ने दूध पाणी ने न्यारा तो एक यो हीज पक्षी कर शके है। यूँ ही साधन योग भी कह्यो, तो वो भी सवाँ रो शिरोमणी'ज है, ने समाधि विभूति कैवल्य री महिमा भी अणी'ज माफिक है, ने जड चेतन रा विवेक में तो एक ही है। पूर्व जन्म रा सुकर्ताँ शूँ कणी'क ने हीज समाधि पाद रो अधिकार मिले है। दूज्यूँ साधन पाद तो

अर्पण करना अर्थात् ईश्वर निमित्त काम रना) को क्रिया योग कहते हैं।

नोट—सहन करना (तप) और शास्त्र की आज्ञानुसार सहन करना (स्वाध्याय) और उसका भी अभिमान न करना (ईश्वर प्रणिधान

सारां ही मनुष्यमात्र रे वास्ते है, ने तीव्र वेग शूँ साधन करवा वाळा रे समाधि छेटी नी है। कतराई के'वे, अश्यो उपाय स्पष्ट व्हे' जणी ने म्हे कर शकाँ, ने खाली भी नी जाय, वणां रे वास्ते ही यो साधनपाद आरंभ व्हे' है। यो हरे'क कर शके है, नै अणी माफिक साधन करवा शूँ अवश्य समाधि सिद्ध व्हे', ने कोई खतरो भी नी है। अणी'ज साधन योग री गीताजी में जगा' जगा' प्रश्नोत्तर शूँ प्रशंसा कीधी है, ने आपणे भी के' है, के **'साध्या सिद्ध, ने राध्याँ रिद्ध'** व्हे' है। ईश्वर रे वास्ते खमणो, ईश्वर रो विचार करणो, परमेश्वर रो आशरो लेणो, ई काम अखंड महासुख रे वास्ते है।

४—जणाँ रो मन सूधो है, स्वाभाविक ही शान्ति ने पसंद करवावाळो है, वणाँ रे तो समाधिपाद में वश्या ही सूधा साधा उपाय बताय, सहज निर्बीज-जो असली योग है वो-समभाव कीधो है। पण चंचल चित्त व्हे' वणी रे कई उपाय करणो ? वणी पे यो दूसरो अध्याय चाले है। अणी रो नाम क्रियायोग व साधनपाद है। पे'लो तो अश्या ने खमवा रो सा'दरो करणो चाव, जदी'ज आगला स्वभाव छूट, नवा पड शके है, अणी रो ही नाम तप है। दख्यूँ दोड ज्यूँ ही विषयो में 'विना रोक टोक मेलवा शूँ वदी ठे'राय ? पण खमती वगत भी मन शूँ, शरीर शूँ खमती सुँधावतो सुँवादतो खमावणो प्रसन्नता शूँ ईश्वर रो आशरो राखणो, ने वणी रो नाम वा यश स्मरण करता रे'णो।

कहाता है। इस प्रकार तीनों एक ही क्रिया योग के नाम से कहा है।

"तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥"
(गीता कर्म योग 'यही क्रिया योग)

सू०—समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥२॥

१—यो क्रियायोग समाधि प्राप्त करवाने, ने कळेशां ने नवळा करवा रे वास्ते है।

२—अणाँ ने करताँ करताँ पाँच ही दु.ख नवळा व्हे'ने मन महासुख रे लायक व्हे' जाय है।

३—अर्थात् क्रियायोग जो कियो के तप, स्वाध्याय, ने ईश्वरप्रणिधान, अणी शूँ कई फायदो है, तो वीं पे सूत्रकार आज्ञा करे, के अणी शूँ समाधि रे लायक मन व्हे' जाय, ने पाँच ही कळेश नवळा पड़ जाय है। अणाँ पाँचाँ रा ही नाम, ने लक्षण आगे आवे है। ई कळेश, यूँ वाजे के अणाँ शूँ अवकाई पडे है। अणाँ शूँ महासुख रे लायक विचार (मन) व्हेवे, ने दुःख नवळा (ओछा) पडे है। कोइ के'वे, के जदी पे'ली रा अध्याय में समाधि री सब वात आयगी, फेर अणी क्रियायोग री कई आवश्यकता है? जणी पे के'वे, ईं शूँ कळेश नवळा पड़ ने समाधि री योग्यता आवे है अर्थात यो पे,ला पाद रो साधन है, ई शूँ ही अणी रो नाम साधन अध्याय है।

---

(५) प्र० हे भगवन्! क्या इस क्रियायोग से भी सम्पूर्ण दुःख सदा के लिये मिट कर परम-आनन्द मिल जाता है।

उ० क्रियायोग से क्लेश कमजोर (तनू) हो जाते हैं और समाधि की योग्यता हो जाती है। समाधि ही सब दुःख की नाशक और सुख का मूल है। यह पहले तुम्हें कहा ही है अर्थात् इस क्रम से समाधि की प्राप्ति होती है।

४—अणी क्रिया योग शूँ पे'ली तो म्हन करणो, ने पछे वो भी ईश्वर रो जप, ने वणी रा हुक्म माफिक प्रसन्नता शूँ, म्हणो ने पछे वो भी ईश्वर रे आधीन व्हे'ने वणी रे हीज अर्पण कर देणो। अणी शूँ समाधि री भावना सहज में ही व्हे' जाय, ने कळेश आपो आप ही नबळा पड जाय। अणी बिना यो काम व्हे नी शके, ने क्यूँके कळेश तेज व्हे' जतरे समाधि री भावना नी व्हे' शके, ने समाधि री भावना बिना कळेश ढीला नी पडे। अणी वास्ते क्रियायोग शूँ दोई काम साथे ही व्हे'ता र', जणी शूँ योगी सहज में ही नबळा कळेशाँ ने समाधि री भावना करतो थको मिटाय ने आप सहजस्वरूप ने सहज में पाय ले' है।



सू०—अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ॥३॥

१—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष ने अभिनिवेश, ई पाँच ही कळेशाँरा नाम है।

२—मूर्खता, म्हूँपणो, मोह, प्यार ने भय मरण दुखो रा मूल ई पाँच बीज दुख है। अणी रा बीज नाम अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, ने अभिनिवेश है। ई बीज पाँच कळेश भी बाजे है।

(१) प्र० हे भगवन्! वे क्लेश कौन से हैं, जो क्रिया योग द्वारा तनू (कमजोर) किये जाते हैं। जिनके क्षीण होने से समाधि की योग्यता आ जाती है।

३—अबे अविद्या कणी ने के'वे है, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश कणी ने के'वे है, सो आगे बतावे है। कोई के'वे, कळेश तो ससार मे हजाराँ तरे' रा है, वणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के नराई नी है, केवल पाँच हीज है। ई मिटवा शूँ सब मिट जायगा। सब कळेशाँ री जड़ ई पाँच हीज कळेश है और तो अणाँरा डाळी पानड़ा है। मूरखता, म्हूँपणो, मोह, खार, ने भय ई पाँच हीज दुःख है। अठे या वात पैदा व्हे' है, के साधन करवा शूँ कळेश नबळा पड़े है। ई मिटवा शूँ सब कळेश मिट जाय ने ई व्हेवा शूँ सब कळेश व्हे' जाय है। ज्यूँ—ज्वर में उत्ताप अरुचि, डीलदूखणो, बेचैनी, आदि व्हे' है, ने वणी रे मिटवा शूँ सब मिट जाय है। यूँ ही अणाँ पाँचाँ शूँ ही और सब क्लेश है, ने ई मिटयाँ ने सब मिट जाय है।

४—वणाँ पाँच ही क्लेशाँ रा ई नाम है-अविद्या (अज्ञान), अहंकार, राग, द्वेष, ने आसक्ति। ई और कई नी है, जो पे'ला पाँच वृत्तियाँ की', जणाँ मे'ली विपर्यय वृत्ति रा हीज भेद है। पण आखा ही संसार रो— —घर यो हीज है। अणी'ज में उळझवा शूँ मनख अनर्थ शूँ अनर्थ में उळझ ने महा झूठ री जाळ में पड ने तड़फड़वा लागजाय है। गुण गाढा पडता जाय, गाठाँ पे गांठाँ घोळावती जाय। भाव यो के अणाँ पाँचाँ शूँ क्लेश

उ० अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, ये पाँचों ही क्लेश होते हैं। मुख्य ये ही पाँच क्लेश हैं, या॰ी सब दुःख इन्हीं के भेद हैं।

भुगतणा पडे है । या हीज भूल ने दूजा दूजा क्लेशाँ मे दूजो दूजो उपाय करतो फिरे जकी'ज वो विपर्यय है ।

—०※०—

सू०—अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥४॥

१—सब दुःखाँ रो मूळ मूर्खता है । पछे भलेई, वी दुःख दीखो वा मती दीखो वा दीखो मिटो वा नबळा दीखो ।

२—दीखणो, नी दीखणो, दीखणो नी दीखणो ने नबळा दीखणो, ई आणाँ रा चार चार भेद है । आणाँ ने हीज उदार प्रसुप्त, विच्छिन्न, ने तनु भी के' है । आणाँ सब दुःखाँ रो मूळ मूर्खता हीज है ।

३—अबे अठे या वात आवे, के ज्यूँ सब क्लेशाँ रा मूळ ई पाँच हीज क्लेश है, यूँ आणाँ पाँचाँ में ही मुख्य क्लेश [illegible]

प्र०—इन पाँचों में भी मुख्य क्लेश किसको समझना चाहिये ?

उ०—अविद्या ही सब क्लेशों (दुःखों) का मुख्य कारण है । हे वत्स ! कभी ये क्लेश छिपे पड़े रहते हैं—जो समय पाकर ही मालूम होते हैं । इन्हें प्रसुप्त (सोते हुये) क्लेश कहते हैं । कभी ये कमजोर हालत में दीखते हैं, ये तनु (निर्बल) कहे जाते हैं । कभी इनमें से एक दबता और दूसरा उठता है और दूसरा दब कर फिर [illegible] उठ खड़ा होता है । इस उठने गिरने [illegible] क्लेशों का [illegible]

के जणी एक रे मिटावा शूँ बाकी रा चार ही मिट जाय। जणी पे के' वे है, के एक अविद्या ही सब क्लेशाँ रो मूळ है। अणी रे मिटवा शूँ सब क्लेश मिट जायगा। अणी पे या बात आवे, के ह्रे'क क्लेश व्हे'ती वगत दूसरा क्लेश तो नी दीखे, ज्यूँ, राग री वगत मोह कठे परो जाय, ने राग री वगत क्रोध कठे रे' है-जो राग री वगत द्वेष नी व्हे' तो पाछो द्वेष री वगत कठा शूँ आय जाय है, ने राग री वगत द्वेष रे'वे, तो दीखे क्यूँ नी है। क्यूँके वो ही रीश करतो थको साथे ही प्रेम करतो नी दीखे, ने यूँ ही प्रेम रे साथे ही रीश करतो भी कोई नजर नी आवे। जदी एक क्लेश नजर आवे वणी वगत बाकी रा क्लेशाँ री कई हालत व्हे'है। क्यूँके म्हाँणे क्लेशा ने मिटावणा है, ने सब क्लेशाँ रा मूळ ई पाँच हीज है। अणाँ में भी एक अविद्या ही सबाँ रो मूळ है। जदी या बिलकुल मिटजावा री म्हाँने निश्चय कूँकर व्हे'। क्यूँके वे'वार में देखाँ तो भी आज अणाँ साधनाँ रे घट'जावा शूँ मनखाँ में अतरी फूटारोळ मचगी'है। जठी देखो वठी मनखाँ रा जीव ठिकाणे नी है। कोई कइ उपाय सुख रो विचारे, कोई कठीने ही

विच्छिन्न (अस्तव्यस्त) कहते है और जब एक ही क्लेश प्रबल होकर अन्य सब दब जाते हैं तो क्लेशों की इस दशा को उदार (प्रबल) दशा कहते है। अब चाहे सो क्लेश इन (प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, उदार) चारों हालतो में से चाहे, जिस हालत में हो परन्तु अविद्या ही उनका कारण (मूल) समझना चाहिये, अर्थात् सब हालतों में सब क्लेशों का कारण अविद्या ही है।

(नोट) बालक में प्रसुप्त, साधक में तनू (सूक्ष्म), राग द्वेषवान में राग के समय द्वेष विच्छिन्न और द्वेष के समय राग विच्छिन्न

अक्ल दौडावे, पण सूधी वात है। अणी क्रिया योग ने मनख मींचा मन शूँ नी पकडेगा, जतरे कदी भी सुख शान्ति नी व्यापेगा। चावे जतरा कानून, ने चावे जतरा नाचा कूदा करो। क्यूँक जणी रे वे'वारो व्यो गेलो है, वणी'ज गेले चालवा शूँ वो गाम आवे है। आथमणी कानी चाले, ने उगमणी कानी रा गाम मे जावा रो इरादो करे, तो कूकर पार पडे। आज भी थोडो घणोसुख दीखे सो भी अणी योग रो हीज अश है, यूँ शमझ लणो चावे अणी वात ने योग रा अर्गां ने समझाया वठे समझावा रा विचार है जणी शूँ अठे नी फेलाई।

(या टीका अठा तक हीज मिली है)

४—अणा पाच क्लेशाँ मे भी मुख्य अविद्या ने हीज समझणी। बाकी चार तो अणी रा हीज पेटा मे है। अविद्या चार प्रकार री दर्शी है, ने वणी रा भी एक एक रा चार चार भेद किया है। एम, अतरी ही दाण ई क्लेश सूता रे'है पण जदी घोर कारण [illegible] तो खबर पडे, के देखो अतरा ओटाळ कठे भर्‍या [illegible]। [illegible] [illegible] गाजत मे के'जदी नवळा रे'वे, ने विच्छिन्न रे'वे जणा दरन [illegible] रखता जाय, ने धघता जाय, उदार के'जदी चो[illegible] [illegible]।

होता है और उदार [illegible] है जो अपनी हालत में से [illegible] अन्य से न दबे जैसे द्वेषी का द्वेष राग से न दबे। ये चार क्लेशों की हालत है अविद्या के निवृत्ति होने पर इनका बीज नष्ट हो जाता है वरन ये कभी सुप्त, कभी उदार, कभी तनु, विच्छिन्न होते ही रहते है।

"अज्ञानेना वृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।"

([illegible]

हीज जोरदार वण्यो रे'वे। एक दग्ध क्लेशावस्था है। जणी में चावे जो ही हालतां व्हो' असली वात नी छूटे वा महात्मा री व्हे' है वठे विपर्यय है।

—०❀❀०—

सू०—अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्य-शुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥५॥

१—मिटे जीं ने अमिट जाणणो, शूगला ने पवित्र समझणो, दुःख ने सुख समझणो, आपां ने और जाणणो, यूँ ऊँधी समझ रो हीज नाम मूरखता वाजे है।

(या टीका अतरी हीज मिली है)

२—मिटे जीं ने अमिट जाणणो, शूगला ने पवित्र मानणो,

---

(५) प्र० हे प्रभो ! सम्पूर्ण क्लेशों में व्यापक मुख्य कारण अविद्या ही है, तो विद्या किसे कहते हैं यह कहिये ?

उ० हे सौम्य ! यह विपर्यय वृत्ति (उलटीबुद्धि) ही अविद्या कही जाती है। अनित्य (नाशमान्) को नित्य (अविनाशी) समझना, अशुचि (अपवित्र) को शुचि (पवित्र) समझना, दुःख को सुख समझना और अनात्म (अपने से इतर) को आत्म (आप) समझना यही अविद्या है और यही सब दुःखों का (क्लेशों का) कारण है।

नोट—विषय, शरीर, कामना, अहंता, ही क्रम से अनित्य अशुचि, दुःख, अनात्मा हैं।

दुःख ने सुख समझणो ने आपाँ ने और गणणो ही मूर्खता वाजे है। अणी ने हीज अविद्या के' है। सब तरे' रा दुःख री मूळ या हीज है।

४—अनित्य ने नित्य गणे, अपवित्र पवित्र माने, दुःख ने सुख समझे, अनात्मा ने आत्मा देखे, जणी समझ शूँ, अशी विपरीत विपर्यय री समझ रो ही नाम अविद्या है। अर्थात् ऊँधी बुद्धि ने अविद्या के' है। अणी वास्ते या सांची शूँ ऊँधी है, सांची समझ अविद्या नी, समझ रो नी व्हे'णो अविद्या नी, समझ व्हे'णो अविद्या नी पण सांची समझ री ऊँधी समझ रो नाम अविद्या है। यूँ अविद्या ने ओळखी ने विद्या आई ने विद्या आई ने सब व्हियो।

— — — —

सू०—दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवाऽस्मिता ॥६॥

उ०—देखे जो ने दीखे जणी रो एक व्हे' ज्यूँ केणो ही ऐपणो है। अणी ने हीज अस्मिता के' है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! सम्पूर्ण क्लेशों का व्यापक कारण जो अविद्या है, उसे मैंने समझ लिया अब कृपाकर आप ने दूसरा जो क्लेश "अस्मिता" कहा था, वह भी समझा दीजिये?

उ०—दृग्शक्ति (देखने का स्वभाव) दर्शन शक्ति (दीखने का स्वभाव) अर्थात देखने वाला और दीखने वाला यद्यपि एक तो हो ही नहीं सकते। परन्तु इनको एक ही समझना ही अस्मिता (अहंता) है।

४—एक देखवा री शक्ति है, ने एक दीखवा री शक्ति है। देखवा री शक्ति कदी भी दीखवारी शक्ति नी व्हे' शके। क्यूँके वणी मे तो दीखवा री शक्ति ही नी है। अग व्हे'ती कूँकर व्हे'। यूँ ही दीखवा री शक्ति भी देखवारी व्हे'ई नी शके। पण ऊँधी समझ शूँ अणाँ ने ऊँधी कर ने मानले', व्हे' नी तो ई यूँ हीज दोयाँ ने ही शेळ भेळ करने अणी पे विचार ही नी करे, अगी रो ही नाम अस्मिता म्हूँपणो नाम रो क्लेश है। अणी ने जो न्यारो न्यारो कर शके, तो केवल व्हियो व्हियो त्यार है। पण विचार ही नी करणो, ने ऊँधी समझ नी छोडणी ही हाथाँ शूँ भाटा उछाळ ने करम पे पटकणा है।

सू०—सुखाऽनुशयी राग: ॥७॥

७—सुख रे वास्ते विचार करणो ही मोह है। अणी ने राग भी के'वे है।

४—सुख ने याद करने वणी री तृष्णा वधावणो ही राग नाम रो क्लेश वाजे है। अणी मे भी अविद्या रे'वे है, जदी कुत्ता

---

(०) प्र०—आपने जो अविद्या आदि पाच क्लेशों के नाम कहे, उनमें तीसरा क्लेश राग कहा था, कृपा कर अब राग किसे कहते हैं सो भी समझा दीजिये ?

उ०—सुख का काम राग कहाता है अर्थात् सुख के वास्ते जो विचारादि हैं, वे राग हैं।

री नाहँ विषयाँ में सुख समझ ने मन भटके। ज्यूँ, तो विद्या-
वणताँ कई देर लागे। असली सुख ने समझ ले' जठा केडे फेर
कई रियो। पण असली शू अँवळा नी जचे जतरे अविद्या ही कई
व्हो' अणी वास्ते बारला सुखाँ मे ही सुख मानणो राग नाम
रो क्लेश वाजे है। वीतराग रा मन री स्मृति भी अणी में घणी
मदद कर साँची री कानी ले'जाय है।

सू०—दुःखाऽनुशयी द्वेषः ॥८॥

२—दुःख रे मिटावा रो विचार ही खार है, यो ही ज द्वेष
वाजे है।

४—यूँ ही दुःख ने याद करने वणी शूँ खार करणो द्वेष वाजे
है। यो भी अविद्या रो ही कारण है ज्यूँ गेलचालतो दुःख रो
खार क्यूँ करो। पे'लो तो विचारणो के दुःख कई के' है क्यूँ [illegible]
है ने मिटे के नी', ने मिटे तो कणी शूँ मिटे, यूँ विचारे जणी ना
अविद्या रवे ही कठे। पण यूँ ही विचारे तो भी मनोमन ही
ज्यो ही ज विचारे। पण चतुर्व्यूह योगशास्त्र रे अनुसार नी
विचारे ने साँच तो एक ही ज व्हे' है ने वा साँच विद्या वाणिनो
ने ही ज सूझे है। दूसरा तो खाडा मे शूँ खाडा मे पड़ता जावे,
ने ठोकर गेले नी लागे अयळी समझ नी छोडे।

---

(५) प्र०—द्वेष जो चौथा क्लेश है, उसका क्या लक्षण है ?

उ०—दुःख का नाम द्वेष कहाता है अर्थात् दुःख के वास्ते जो उसकी
निवृत्ति के विचारादि कार्य हैं वे द्वेष कहे जाते हैं।

सू०—स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ॥९॥

२—समझणाँ में भी चमक रे'जाय, यो ही भय वाजे है। अणी ने अभिनिवेश वा मृत्युभय के' है।

४—आपणी'ज धुन मे व्हेवावाळो, ने सबाँ मे ही एक सरीखो जो एक धुन रो वण्यो रे'णो, अभिनिवेश नाम रो क्लेश वाजे है। क्लेशाँ री नीम अविद्या है, तो अभिनिवेश वणी रो कळश है। अणी मे वडा वडा ने ही यो विचार आय जाय, के म्हूँ मर जाऊँगा, ने वण्यो ही कीड़ी कुजर ने भी मरवा शूँ डरलागे। समझसोच ने देखे तो हाल कोई मरवो भुगत्यो व्हे' जश्यो जीव नीदीखे। क्यूँके मरणो, ने जीवणो एक जन्म मे व्हे'ई नी शके, ने पे'ली री जो याद नी, पण अणी अभिनिवेश शूँ जणाय, के पे'ली रा सस्कार शूँ ही यो व्हे' है।

---

५ प्र—पाँचवाँ क्लेश जो आप ने अभिनिवेश कहा था, कृपया उसका भी लक्षण आज्ञा कीजिये ?

उ०—सब जीवों मे चाहे वह अज्ञानी कीट हो, चाहे समझदार मनुष्य ही हो, जन्म से ही जो भय है, वह ही अर्थात् भय ही अभिनिवेश कहा जाता है। यह अज्ञानी कीट में भी होता है और जो समझदार मनुष्य है, जिन्होंने यह निश्चय कर रक्खा है, कि जन्म लेगा वह अवश्य ही मरेगा उनमें भी मृत्यु भय होता है अर्थात् वे भी यही चाहते हैं कि हम नहीं मरें और अज्ञानी भी यही चाहता है। यही मृत्युभय अभिनिवेश नाम का पाँचवाँ क्लेश है।

सू०—ते प्रतिप्रसव हेयाः सूक्ष्माः ॥१०॥

३—अणाँ पाँच ही नवळा व्हिया थका दुखाँ ने साँची समझ शूँ मिटाय देणा चावे ।

४—अणाँ क्लेशाँ ने मिटावारो उपाय यो है, के पे'ली तो अणाँ ने क्रिया योग शूँ नवळा कर देणा, पछे अणाँ री शक्ति क्षीण व्वा शूँ म्होटा, ने छोटा में (बारीक मे) अभिनिवेश ने द्वेष मे न द्वेष ने राग मे, मिलावता जाणो। यूं ही अविद्या मय सब क्रिया ने विना बीज रा व्हिया थका देखवा मात्र रा र जायगा, पछ पाछा भूगा नी फूट शके। क्यूँके असलियत समझायगी। असलियत समझ लेणो ही विद्या है, ने योग री भूमिका र आखिरी या ही है। अणी मे बिलकुल कचाई नी रे'णी चावे। क्यूँ एक मे शूँ अनेक अनर्थ पाछा प्रगट व्हे जाय सो पाछा नसट देणा।

---

५ प्र०—जब क्रिया योग से ही क्लेश कमजोर होजाते हैं, तो फिर निर्बीज समाधि तक की झंझट की क्या आवश्यकता है ?

उ०—इनका बिलकुल नाश निर्बीज समाधि विना नहीं होता। क्योंकि सूक्ष्म क्लेश भी पीछे उठ आते हैं इसलिये निर्बीज समाधि से इनका बिलकुल नाश कर देना चाहिये।

गी०— योगसन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥१॥

(गीताजी)

सू०—ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥११॥

२—पे'ली जोरावर दु'खाँ ने महासुख रा काम (क्रियायोग) शूँ नबळा करदेणा चावे ।

४—अणाँ री वृत्तियाँ ने ध्यान कर, ने मिटावणी चावे। ध्यान शूँ विचार,विद्या सहित एकाग्रता शूँ है। अगी'ज ने प्रसख्यान भी के' है। जदी यूँ ध्यान शूँ ही वृत्तियाँ नबळी पडजाय, जदी प्रति प्रसव शूँ समेटवा शूँ बीजभाव नष्ट व्हे'ने अविद्या नष्ट व्हे'जाय। वृत्तियाँ ने ध्यान शूँ कमजोर कर देणो तो सूधो है, पण कमजोर कर बिलकुल मे'ल मिटाय देणो, (बीज मिटाय देणो) अविद्या गो संस्कार हीज नष्ट कर देणो मुशकिल है, ने यो नी व्हियो जतरे पाछो सब अनर्थ व्हेवा गे, कदी-न-कदी ।

---

(१)प्र०— हे भगवन् जब निर्बीज समाधि से ही इन क्लेशों का बिलकुल नाश होता है, तो फिर निर्बीज समाधि का ही अनुष्ठान करना चाहिये । इस क्रियायोग की फिर क्या आवश्यकता है ?

उ०— हे सौम्य ! इनकी स्थूलता ध्यान से मिटानी चाहिये अर्थात् क्रियायोग से क्लेशों को कमजोर कर ध्यान से सूक्ष्म कर फिर समाधि द्वारा निर्बीज कर देना चाहिये । हे सौम्य ! क्रियायोग विना समाधि की योग्यता चित्त में नहीं आती । इसलिये क्रिया योग से ही क्लेशों को कमजोर कर फिर क्रम से निर्बीज समाधि से बिल्कुल नाश कर देना उचित है ।

सू०—क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेद-
नीयः ॥१२॥

२—ई दुःख रे' जावा शूँ ही अठारा, ने वठारा कर्म भेळा व्हे'है।

४—अविद्या आदि क्लेश रे जाय, तो कर्मा री वासना भी र'जाय। क्यूँके अविद्या हीज सब अनर्थ रो बीज है, ने अणीरा अस्मितादि ने प्रसुप्तादि अनेक भेद है। अणी वास्ते क्यो क अविद्या रो तो नाम निशाण हीज नी राखणो ने अविद्या ने जाणी, ने विद्या व्ही'। क्यूँके दोई तो साथे रे' ही नी सके। पण जाणणी ही नी, ने सूधी बात है, जदी तो मनुष्य-शरीर रो लाभ [illegible] व्हियो, अणी ने नी जाणवा श वासना रे'वे, ने वा अणी जन्म में वा दूसरा जन्म में भोगणी हीज पडे। क्यूँ के धीनरा [illegible] आज फूटो वा काल पण फूट्यो विना तो नी ज र वे। अणी [illegible] अविद्या जाणणा।

[illegible]—हे दयालो! इनको निर्बीज (बिल्कुल नाश) न करे तो क्या हानि है। कमजोर क्लेश तो दुःख देते ही नहीं।"

[illegible]—हे सौम्य! चाहे जिस हालत में रहे तो भी कर्मों के संचय का कारण क्लेश ही हैं और कर्मों का संचय (समूह) होगा तो उसे इस जन्म में वा अन्य जन्म में अनुभव करना ही पड़ेगा।

सू०—सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥१३॥

२—कर्म व्हे' जशी ही जूण, ऊमर, ने भोग मिले है।

४—अविद्या चावे जणी दशा मे रे'वेगा, तो भी वणी रो फळ, जाति, आयु, ने भोग व्हियाँ विना नी रे'वे। एक नामीक अविद्या विपरीत विचार, ने नी ओळखवा शूँ यूँ तरे' तरे' री जाताँ, आयुप, ने भोग भोगणा पडे। अणी वास्ते जणी वात रो सूधो वात रो, प्रत्यक्ष वात रो, आप्ताँ (वडा आदमी) री वात रो सहज ज्ञान प्राप्त कर लेणो, के जो वास्तव मे है हीज, ने सदा रे वास्ते जणी शूँ सव दुखाँ शूँ छूटकारो व्हे' अश्यो क्यूँनो व्हेणो चावे। यूँ तो या तो व्ही' व्हेवाई है हीज यो भाव है।

---

(७) प्र०—हे भगवन्! सञ्चय किये हुये कर्म इस जन्म मे या पर जन्म में किस प्रकार भोगे जाते हैं।

उ०—जाति (शरीर) आयु (उम्र) और भोग (विषय भोग) को कहते है—अर्थात् कर्मों का मूल क्लेश विद्यमान् होने से कर्म इकट्ठे होते रहते हैं और वे जाति आयु भोग रूप से प्रकट होते है।

मू०—ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्य हेतु-
त्वात् ॥१४॥

३—आछा कर्मां शूँ ई तीन ही सुख रा मिले, ने खोटा शूँ ई'ज दुःख रा मिले है।

४—वी जाति, आयु ने भोग के'क तो सुख रा व्हे' ने के'क दुःख रा व्हे'। ई तीन ही पुण्य रा कारण शूँ व्हे'तो सुख देवा-वाळा व्हे'जाय, ने पाप रा कारण शूँ व्हे'तो ई'ज दुःख रा कारण व्हे'जाय अर्थात् पुण्य शूँ सुख, सुख री जाति आयु, ने भोग मिले। ने पाप शूँ दुःख री जाति, आयु ने भोग मिले। अणी में रेट री घड्याँ ज्यूँ सुख शूँ दुःख, ने दुःख शूँ सुख फिरता ही रे'वे है। यूँ जतरे अविद्या रो मूळ रे' वतरे या लम्पटेर नी मिटे। क्लेश व्हे'जतरे कर्माशय (वासना) व्हे', वासना व्हे'तो भोग व्हे', भोग व्हे' तो सुख दुःख रा'ज पुण्य पाप शूँ व्हे'ता रे'। यूँ सांकळ री कडी (री नाँई बंध्या थका है)

(या टीका अठा तक होज मिलो है। क्यूँ के बिमारी में लिखाई ही)

भ०—हे प्रभो! वे जाति, आयु और भोग सुखदाई होते हैं या दुःखदाई।

उ०—वे जाति आयु आदि पुण्यकर्म से हो तो सुख देने वाले और पाप कर्म से हो तो दुःख देने वाले होते हैं।

सू०—परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥१५॥

२—सर्वां रो नाश है जणी शूँ, मिटवा रा कारण है जणी शूँ, ने अणाँ री याद रे'जाय जणी शूँ, समझणा रे' तो ई सारा ही दु.ख हीज है। क्यूँके एक जश्यो रे'वा रो अणाँ रो स्वभाव ही नी है।

---

५ प्र०—तव तो दुःख देने वाले पाप कर्मों का ही त्याग कर देना चाहिये, निर्वीज समाधि से सम्पूर्ण कर्मों का मूल क्लेश (अविद्या) के त्यागने की क्या आवश्यकता है।

उ०—हे सौम्य। वस्तु का एक समान न रहना बाधा (तकलीफ़) करना, ववशि पैदा करना, चित्तवृत्ति का वदलते रहना आदि बातें वाहर से सुखो मे वनी ही रहने से समझदार के लिये तो वाहरी सव सुख भी दु ख ही है।

नोट—"ये हि संस्पर्शजा भोगा दु.खयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय, न तेपु रमते वुध ॥१॥" (गीता)

सू०—हेयं दुःखमनागतम् ॥१६॥

२—दु'खाँ ने नी आवा देणा चावे।

---

५ प्र०—हे भगवन्। मैंने वडी भूल की जो इतने समय तक दु खों को सुख समझ कर मारा मारा फिरा अव मुझे क्या करना चाहिये?

उ०—हे सौम्य ! दुःख है, इस को जान लिया तो त्याग करना चाहिये अर्थात् आगे को कभी दुःख होवे ही नही ऐसा उपाय करना चाहिये। हे सौम्य ! अब आने वाले ही दुःख रोके जा सकते हैं।

सू०—द्रष्टादृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥१७॥

२—देखे जणी रे, ने दीखे जणी रे मिल जावा शूं हीज दुःख आवे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन ! इसी का उपाय सब ही करते हैं कि हमें कभी दुःख नही होवे, परन्तु दुःख किस से होता है, यह न जानने से दुःख मिटने के बजाय बढ़ते ही जाते हैं। इस लिए दुःखो का कारण क्या है अर्थात दुःख किस से होते हैं सो कृपाकर कहिये।

उ०—द्रष्टा (देखने वाले) का और दृश्य (दीखने वाले) का संयोग ही दुःख का कारण है अर्थात देखने की वस्तु और दीखने की वस्तु की एकता (संयोग) से ही दुःख होते हैं।

सू०--प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकम् भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम् ॥१८॥

२—देखावणो, बदलणो, ठे'रणो, हीज दीखे ज्यो वाजे है। अणी ने ही दृश्य भी के' है। अणी में ही शरीर इन्द्रियाँ वंधणों, ने छूटणो सारा ही आय गिया।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! तो दृश्य (दीखने वाला) किसे कहते हैं यह मुझे पहले समझा दीजिये?

उ०—दृश्य (दीखने की वस्तु) प्रकाश (ज्ञान) क्रिया (चेष्टा) स्थिति (ठहरना) का स्वभाववाला है, यही इन्द्रियाँ और उनके विषयो के आकार से दीखता है। यही दृश्य भोग (बंध) और अपवर्ग (मोक्ष) (भोग मोक्ष भी इसी के अन्तर्गत है) के नाम से भी कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि कुल दीखता है सो दृश्य ही है।

सू०—विशेषा विशेषलिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणि ॥१९॥

२—म्होटी चीजाँ, महीं चीजाँ वणी शूँ महीं, ने सब शूँ महीं, ई यो दीखे जणी रा हीज भेद है। अणाँ ने ही विशेष, अविशेष लिंगमात्र, ने अलिंग भी के' है। ई गुण-पर्व भी वाजे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन! इस दृश्य को जरा मुझे और समझा दीजिये?

उ०—हे सौम्य ! दृश्य के मुख्य चार भेद हैं और किये जा सकते है। विशेष स्थूल (पञ्च महाभूत और ग्यारह इन्द्रिये इन्हे ही षोड़शक भी कहते हैं अर्थात स्थूल अविशेष पञ्चतन्मात्रा और अहंकार अर्थात् सूक्ष्म) लिंग मात्र सूक्ष्म (महत् तत्व और बुद्धि भी कहाती है) इनका निशान सूचक (बताने वाला) भी सूचक कहलाता है, अलिंग अव्यक्त (जिसका कुछ निशान नहीं) ये ही चौवीस तत्व अव्यक्त दृश्य हैं, जो कुछ दीखता है वह कुल दृश्य है।

सू०—द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययाऽनुपश्यः ॥२०॥

?—हरेक दीखवा रे साथे देखवो है पण यो दीखवा रा नाम भी नी मिले है। यो केवल देखवो हीज दीखे जो थाजे है। [illegible] ने हीज द्रष्टा भी के' है।

---

(५) प्र०—अच्छा तो अब द्रष्टा किसे कहना चाहिये सो भी समझा दीजिये ?

उ०—देखना मात्र अर्थात सीर्फ देखना ही द्रष्टा कहाता है इसी से वह सदा शुद्ध होने पर भी वृत्ति (विचार) के साथ मिला होवे ज्यो भान होता है, अर्थात केवल चैतन्य को द्रष्टा कहते हैं वह देखता नहीं है।

सू०—तदर्थमेव दृश्यस्यात्मा ॥२१॥

२—दीखे ज्यो देखे जणी शूँ ही साबित है।

---

५ प्र०—हे भगवन्! द्रष्टा दीखता ही नहीं तो उसके होने की क्या सिबूत है?

उ०—हे वत्स! द्रष्टा के ही लिये दृश्य की स्थिति है। जहां दृश्य है, वहीं द्रष्टा है। विना द्रष्टा के दृश्य की स्थिति ही नही है। हे वत्स! यह दृश्य दीखता है, यही उसकी सिबूत है। द्रष्टा के विना यह दृश्य ठहर नहीं सकता।

सू०—कृतार्थंप्रतिनष्टमप्यनष्टं तदन्यसा-धारणत्वात् ॥२२॥

२—यूँ ठीक समझले' वणी रे तो याँ दोयाँ रो मिलणो है ही नी, पण अण जाण रे तो मिलावट है हीज।

---

५ प्र०—हे भगवन्! इस विचार से तो द्रष्टा दृश्य कहना ही नहीं बनता फिर यह शास्त्र ही किसके वास्ते है?

उ०—जिसकी इस प्रकार समझ होगई है उसके लिये द्रष्टा दृश्य कहने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु जिसके यह बात समझ में नहीं आई उसके लिये द्रष्टा दृश्य कहना ही पड़ता है।

सू०—स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥२३॥

२—देखे जणी ने जाणणो वा दीखे जणी ने जाणणो ही यांरो मिलावट वाजे है। अणी ने ही द्रष्टा दृश्य रो संयोग भी के है।

---

(५) प्र०—द्रष्टा और दृश्य को (जड़ चेतन्य को) आप की दया से मैंने समझ लिया। अब कृपा कर यह बताइये कि संयोग किसे कहते हैं—जो कि सम्पूर्ण दुःख का कारण आपने कहा था।

उ०—हे सौम्य! यही संयोग कहाता है कि मैंने द्रष्टा और दृश्य को (जड़ चैतन्य को) समझ लिया। क्योंकि द्रष्टा के देखने की वस्तु ही दृश्य है। इन द्रष्टा दृश्य दोनों के सिवाय इन का समझाने वाला कौन हो सकता है (कोई नहीं है) तो भी इनको समझना है कि यह दृश्य है और यह द्रष्टा है यही संयोग कहाता है।

सू०—तस्य हेतुरविद्या ॥२४॥

२—या मिलावट मूर्खता सूं होज है।

---

(५) प्र०—जब दो (जड़ चेतन वा प्रकृति पुरुष [illegible]) के सिवाय तीसरा कोई [illegible]

जो कि इन दोनो को जाने तव यह तीसरा सयोग कहाँ से आगया अर्थात् संयोग का कारण क्या है, संयोग किससे होता है। यह कहिये।

उ०—इस सयोग का कारण वही (विपरीत भावना विपर्यय वृत्ति) अविद्या है।

सू०—तदभावात् संयोगाऽभावो हानं तद्दृशे कैवल्यम् ॥२५॥

२—मूर्खता मिटवा शूँ या मिलावट मिटजाय, ने अणी रो मिटवो ही देखे, जणी रो निखाळश व्हे'जाणो के'है। अणी रो मिटणो "हान" वाजे है, ने निखाळशपपण ने कैवल्य के' है।

---

५ प्र०—तो यह संयोग कैसे मिटना है यह आज्ञा कीजिये ?

उ०—इस अविद्या (विपरीत ज्ञान) के ज्ञान के मिटने से सयोग (जड चैतन द्रष्टा दृश्य का मिलान) मिट जाता है और यही (इस मिलान का मिटना ही) द्रष्टा का कैवल्य (मोक्ष स्वरूपावस्थान केवल द्रष्टा मात्र रह जाना दृश्य से अलग हो जाना) है।

नोट—"तद्विद्याद् दुःख सयोगवियोग योगसज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगा निर्विण्ण चेतसा॥" (गीताजी)

—०❀❀०—

सू०—विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥२६॥

१—साँची समझ रो अडग व्हे'जाणो ही अणी रो उपाय है। अणी ने ही अविप्लवा विवेकख्याति के'हे।

प्र०—अविद्या से ही सम्पूर्ण दुःखों की परंपरा उत्पन्न होती है और इस अविद्या का मिटाना ही मोक्ष वा योग है। तब इस अविद्या के मिटाने का क्या उपाय है सो कृपा कर आज्ञा करें।

उ०—विवेकख्याति (निर्मल ज्ञान) ही इस अविद्या के मिटाने का मुख्य उपाय है अर्थात् दृढ निर्मल ज्ञान से (विद्या से) ही अविद्या मिटती है।

नोट—'ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥'

गीताजी



सू०—तस्य सप्तधा प्रान्त-भूमिः प्रज्ञा ॥२७॥

१—अणी अटल साँची समझ में सात तरै'रा विचार [illegible]। [illegible] ऊँचा दूजा विचार करणो नी आवे —(१) दुःखां ने जाण [illegible] (२) दुःखां रो कारण मिटगया (३) [illegible] (४) साँची समझ भी आयगी। (५) [illegible] मिटगयो (६) अबे तो मन सेंती [illegible] (७) [illegible] तो है ज्यो ही कैवल्य है। ई सात ही [illegible]

वणी रा व्हे'जाय है। अणी ने ही सांची, समझ ने परमपद के' है। यो ही अखंड महासुख वाजे है, ने योही योग है॥

---

५ प्र०—इस विवेक ख्याति नाम के निर्मल ज्ञान का होना कैसे मालूम होता है।

उ०—इस निर्मल विवेक ख्याति के सात निशान हैं अर्थात् अविचल दृढ़भाव से उसे क्रम क्रम से ये सात निश्चय होते जाते हैं अर्थात् जड चैतन के पृथक् होते ही ये सात वाते उसके चित्त में दृढ़तापूर्वक यथाक्रम आती है इसी को विवेक ख्याति कहते हैं (१) अव कुछ भी समझना नहीं रहा। (२) अब कुछ भी छोड़ना बाकी नहीं रहा। (३) पाने के लिये अव कुछ भी बाकी नहीं रहा। (४) करने के लिये अव कुछ भी नहीं रहा। इन चार हालतो के सिवाय तीन हालते और ऊँचे दर्जे की आती हैं, उन्हें चित्तविमुक्ति (चित्त का छूटना) कहते हैं और इन चार को प्रज्ञा विमुक्ति (अर्थात् कुछ यत्न करने से बुद्धि का छूटना) कहते हैं और ये तीन प्रयत्न ही बुद्धि का छूटना कहाती है वे तीन ये हैं—(५) बुद्धि से अव कुछ प्रयोजन नहीं रहा। (६) अव बुद्धि आगे से आगे भागती जाती है, जैसे पर्वत से लुढकता पत्थर नीचे ही नीचे चला जाता है, (७) अव कदापि इसका उत्थान (उठना) हो ही नहीं सकता अर्थात यह तो बिलकुल इसके (वंध के) योग्य है ही नहीं।

(नोट) 'यदा ते मोह कलिल बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेद श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥"

श्रीगीताजी

(नोट) (दुःख[1]-दुःखहेतु[2]-मोक्ष[3]-मोक्षहेतु[4]-बुद्धि की कृतार्थता[5] बुद्धिलय[6]-अपुनरुत्पत्ति[7] इस विवेक की ख्याति है) ।

सूत्र—योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्ति-राविवेकख्यातेः ॥२८॥

७—समभाग पगत्या चढता जाय ज्यूं ज्यूं मूर्खता घटती जाय ने समझ आवती जाय, ने यूं ठेट साची समझ तक पुगाय जाय है ।

---

(५) प्र०—इस प्रकार की विवेक ख्याति किस उपाय से प्राप्त होती है ?

उ०—हे सौम्य ! योग के अंगों को श्रद्धापूर्वक साधने से चित्त शुद्ध होने लगता है । यों चित्त क्रम से इतना शुद्ध हो जाता है कि जिससे विवेक ख्याति उत्—

होजाती है। अर्थात् चित्त शुद्ध हुये विना विवेक ख्याति नही होती और योग के अगो के साधन विना चित्त शुद्ध नहीं होता अर्थात योग के अंगों को क्रम से साधने से क्रम से चित्त इतना शुद्ध होजाता है कि विवेक ख्याति तक प्राप्त होजाती है।



सू०—यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।।२६॥

७—बा'रलो सुधारो, मायलो सुधारो, शरीर रो सुधारो, श्वास रो सुधारो, इन्द्रियाँ रो सुधारो, मन रो सुधारो, म्हूपणा रो सुधारो, ने समझ रो सुधारो, साँची समझ रा इ आठ ही पगत्या हैं। अणाँ ने ही यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, ने समाधि के'है, ने अणाँ आठ ही पगत्या ने योग रा अग भी के' है।

---

(५) प्र०—हे भगवन! योग तो आप ने प्रथम आज्ञा किया था हीं, अब योग के अग क्या हैं सो कृपया पृथक् पृथक् आज्ञा कीजिये कि जिनको साधन करने से विवेक ख्याति रूपी निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् स्वरूपा-वस्थान रूपी योग प्राप्त हो जाता है।

उ०—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, और (८)

समाधि, ये आठ ही योग के अंग हैं। जितने प्रकार के योग हैं वे सब इन्ही के अन्तर्गत आ जाते है।

(नोट) यम नियम से लेकर विवेक ख्याति पर्यन्त क्रम से ज्ञान की दीप्ति होती है।

सू०—अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः ॥३०॥

२—दुखावणो, झूठ, चोरी, वीर्य री खराबी ने भेळो करणो अणां पांच वातां ने ही हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य ने परिग्रह कहे है। अणां रो छोडणो ही वा'रलो सुधारो है, अणां ने यम कहे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्। प्रथम अंग जो आपने योग का यम कहा सो यम किसे कहते है आज्ञा कीजिये। क्योंकि पहली सीढ़ी से ही आगे बढ़ सकता हूँ।

उ०—अहिंसा (दुःख नहीं देना) सत्य (सत्य बोलना) अस्तेय (चोरी नहीं करना) ब्रह्मचर्य (वीर्य की रक्षा करना) अपरिग्रह (संग्रह नहीं करना) इन पांचों को यम (रोक) कहते हैं।

(नोट) अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥१॥
(गीता)

सू०—जातिदेशकाल समयाऽनवच्छिन्नासार्व-भौमामहाव्रतम् ॥३१॥

२—जातरा, जगा'रा, वगतरा, ने नियम रा विचार शूँ भी ई काम नी करणा, पण बिलकुल अणाँ ने छोड़ देणा ही म्होटी तपस्या है, अणी ने ही महाव्रत भी के'है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! ये पाचों यम जो आपने कहे, वे तो मनुष्य मात्र को ही साधने चाहिये और किसी-न-किसी अश मे सब साधते ही हैं फिर इनमे क्या विशेपता होने से ये विवेक ख्याति (विवेक ज्ञान) के शीघ्र उपयोगी होते हैं ?

उ०—इनमे जाति (जैसे गाय वा मनुष्य) देश (जैसे तीर्थ वा मन्दिर) काल (जैसे रविवार वा एकादशी), समय (जैसे भागते हुए वा विश्वास देकर) की कैद (विचार) न रखकर पालने से ही ये महाव्रत कहाते हैं और इनकी क़ैद मे आये हुए ही ये अणुव्रत के नाम से कहे जाते हैं अर्थात् किसी के भी लिये कहीं भी, कभी भी, किसी तरह भी इन यमों को कुछ भी नहीं विगड़ने देने से ये महाव्रत कहाते हैं और ये महाव्रत ही विवेक ख्याति के शीघ्र उपयोगी होते हैं।

सू०—शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणि-धानानि नियमाः ॥३२॥

२—पवित्र रे'णो, संतोष, खमणो, वारंवार भगवान ने याद करणो, ने वणी रो आशरो राखणो, अणी ने शौच, संतोष तप स्वाध्याय, ने ईश्वर प्रणिधान के'है। अणी मायला सुधारा ने हीज नियम भी के' है।

---

(५) प्र०—प्रथम अंग यम को आप ने आज्ञा कर दिया अब योग के दूसरे अंग नियम को मुझे समझाइये ?

उ०—शौच (पवित्रता = मन की और शरीर की सफाई) संतोष, तप (सहन करना) स्वाध्याय (सत शास्त्रों का विचार या जप) ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर में सर्व-शक्ति समझना) ये नियम कहे जाते हैं।

सू०—वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥३३॥

२—अणी वातां ने छोड़वा रो विचार करे तो पाछी [illegible] पक्ष्या रो विचार करणो।

---

(६) प्र०—हे भगवन ! जो इन नियमादि से उलटे विचार उठ कर इनको छुड़ा कर अपनी तरफ खींचते हों, तो क्या करना चाहिये (जैसे मैं इनको तो छोड़ना ही चाहता

ऐसे यम नियमादि को छुडाने वाले विचार बढ जाय तो उसका क्या उपाय है ?

उ०—हे सौम्य ! यो यम नियमादि को छुडाने वाले विचार उठे तो उनके विरुद्ध यम नियम को दृढ करने वाले विचार करने चाहिये ।

सू०-वितर्काहिंसादयः कृतकारिताऽनुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाऽज्ञानाऽनंतफला इति प्रतिपक्ष-भावनम् ॥३४॥

२—छोडवा शूँ, छोडावा शूँ, छोडवो ठीक समझवा शूँ लोभ, क्रोध, ने आलस शूँ, थोडी, घणी, ने बिलकुल, ई वातां छूट जाय है, ने अणाँ रे छूट जावा शूँ अपार दुःख ने अपार मूर्खता भुगतणी पडेगा यूँ विचारवा शूँ ई वातां पाछी गाढी पकडाय जाय है ।

---

(२) प्र०—यम नियमादि को दृढ (स्थिर) करने के विचार कैसे करे ?

उ०—यम नियमादि के त्यागने का विचार होते ही उसके विरुद्ध यम नियमादि को दृढ करने का विचार यों करे

कि हिंसा आदि करना, (जोकि यम नियमादि का त्यागना है) बहुत बुरा है। क्योंकि इसका फल अपार दुःख और अज्ञान है। इन यम नियमादि का स्वयं त्याग तो कदापि करना ही नहीं चाहिये, परन्तु किसी से इसका त्याग कराना भी बहुत बुरा है, त्याग कराना तो क्या किसी ने त्याग कर दिया हो, उसे अच्छा समझना वा उसकी प्रशंसा करना भी महा अज्ञान और अनन्त दुःख देता है। क्योंकि ऐसे सत्कर्म का त्याग लोभ क्रोध या मूर्खता से ही किया जाता है। और जब प्रत्यक्ष ही मूर्खता से किया हुआ काम, दुःख देता है तब इतनी बड़ी मूर्खता का अवश्य ही बुरा नतीजा होगा। इन यमादि योग अंगों का त्याग मृदु मध्य और अधिमात्र तीन प्रकार का है। अर्थात् थोड़ा, मध्य, (कुछ) और बिलकुल। सो बिलकुल तो क्या, परन्तु थोड़ा भी इनका त्याग महा अनर्थ का मूल है। इस प्रकार की भावना (विचार) करे तो योग के अंग स्थिर (दृढ प्रतिष्ठित) हो जाते हैं।

सू०—अहिंसा, प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर-त्यागः ॥३५॥

[illegible]—जणी रे यूँ दुखावणो छूट जाय, वणी रे गूँग [illegible] [illegible] [illegible] वणी ने ही नी दुखाय सके।

[illegible] प्र०—हे भगवन्! योग के अंगों में प्रथम आपने जब [illegible]

था और वह पांच तरह का कहा था। इस में प्रथम अहिंसा वतलाई थी सो इस प्रकार अहिंसा प्रतिष्ठित (दृढ) होजाने से क्या होता है।

उ०—जब इस प्रकार अहिंसा दृढ (स्थिर) हो जाती है, तब उस योगी के पास (सामने) कोई भी किसी का दुःख नहीं दे सकता।

सू०-सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाऽऽश्रयत्वम् ॥३६॥

२—यूं ही झूठ छूट जाय, तो वो के'वे ज्यो व्हे'जाय।

---

(५) प्र०—जब सत्य की दृढता हो जाती है, तो क्या होता है ?

उ०—सत्य की दृढता हो जाने से उसका वचन निष्फल नहीं जाता, वह कहता है, वही हो जाता है।

सू०—अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥३७॥

२—यूं चोरी छूट जाय तो वर्णी रे सब आछी आछी चीजां हाजिर व्हे' जाय।

---

(५) प्र०—अस्तेय-इमानदारी (चोरी नहीं करना) की प्रतिष्ठा (स्थिरता) होने पर क्या होता है ?

उ०—अस्तेय दृढ़ हो जाने से सब उत्तम उत्तम वस्तु उसके पास आ जाती हैं।

०-ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥३८॥

—यूँ वार्ग री रुखाला छूट जावा सूं बळ बध।

) प्र०—ब्रह्मचर्य (वीर्य की रक्षा) की दृढ़ता से क्या होता है ?

उ०—ब्रह्मचर्य की दृढ़ता से शारीरिक और मानसिक बल बढ़ जाता है।

०--अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः ॥३९॥

—यूँ री भेळा करणो छूट जाय तो जनम [illegible] खबर प[illegible] जाय।

) प्र०—अपरिग्रह दृढ़ होने से क्या होता है ?

उ०—अपरिग्रह (संग्रह न रखना) की स्थिरता से [illegible] अपने तीनों जन्मों (पहले क्या था क्या है [illegible] [illegible] क्यों है आगे क्या होगा क्यों होगा [illegible] मालूम होता है।

सू० ४०—शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥४०॥

[illegible] आपणों शरीर रो [illegible] शरीर पे भी मोह नी रे'।

[illegible] योग के प्रथम [illegible] शौच (सफाई) [illegible] होता है सो कहिये।

[illegible] ममता (अभिमान) [illegible] भी [illegible] रहता है।

सू० ४१—सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥४१॥

सू०—स्वाध्यायादिष्टदेवता संप्रयोगः ॥४४॥

भा—सू बारबार याद राखवा शूं इष्टदेव मिले।

---

(५) प्र० आपने स्वाध्याय कहा था, उस से क्या होता है ?

उ० स्वाध्याय [जप वा सत्शास्त्र] की दृढ़ता होने से हमारा इष्टदेव (जिसे हम चाहें वह देवता) मिल जाता है।

सू०—समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥४५॥

भा—सू भगवान रो आशरो लेवा शूं अगाद सुख व्हे।

---

(६) प्र० पाँचवाँ नियम ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर को ही सब शक्ति समझ कर उसी में सब क्रियाओं का अर्पण) है, उसकी दृढ़ता से क्या होता है ?

उ० ईश्वरप्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है।

आज्ञा कर दिये और इन की महत्ता की पहिचान भी आपने एक एक करके समझा दी। अब योग का तीसरा अंग जो आप ने आसन कहा था, वह आज्ञा कीजिये कि आसन किसे कहना चाहिये।

उ० जिस तरह बहुत समय तक बैठे रह सकने पर भी तकलीफ मालूम नहीं हो वही आसन कहाता है।

२०--प्रयत्नशैथिल्याऽनन्तसमापत्तिभ्याम् ॥४७॥

१—उपाय छूट अपार में मन लगाना ये दो उपाय हैं।

(५) प्र० बहुत समय तक एक तरह बैठे रहने से अवश्य ही तकलीफ मालूम होती है जिस उपाय से बिना किसी दुःख के एक ही प्रकार से बहुत देर तक बैठ सकते हैं सो आज्ञा कीजिये ?

उ० अहंकार पूर्वक योगाभ्यास को बस कर देने से और अनन्त शक्ति में ही अपनी शक्ति मानने से आसन सुख सहित स्थिर हो जाता है, अर्थात् यत्न त्याग करने से और अपनी शक्ति अनन्त शक्ति में समझने से आसन सिद्ध हो जाता है।

सू०—ततोद्वंद्वानभिघातः ॥४८॥

र—अणी शूँ गर्मी सर्दी नी व्यापे है।

---

(५) प्र० आसन सिद्ध (स्थिर प्रतिष्ठित) होने से क्या होता है ?

उ० आसन की प्रतिष्ठा (सिद्धि) हो जाने से गर्मी सर्दी आदि की बाधा नहीं होती।

सू०—तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः ॥४९॥

र—यूँ शरीर रो सुधारो मांथ्यां केडे श्वास री चाल ठे'र जाय। अणी ने श्वास रो सुधारो या प्राणायाम के' है।

---

(६) प्र० आप ने चतुर्थ अंग योग का प्राणायाम कहा था सो प्राणायाम किसे कहते हैं ?

उ० आसन के दृढ़ हो जाने पर श्वास का आना जाना रुक जाना ही प्राणायाम है।

सू०—बाह्याऽऽभ्यंतरस्तंभवृत्तिर्देशकाल
संख्याभिःपरिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥५०॥

२—श्वास रो बा'रणे निकळणो, माँयने आवणो, ने ठे'रणो, ऱ्या रे' है, अणी पे जगा' शूँ, वगत शूँ, ने गणती शूँ ओशान राख तो यो फोरो पड ने वत्तो ठे रवा लाग जाय।

---

(५) प्र० श्वास का भीतर रुकना प्राणायाम है, या बाहर रुकना प्राणायाम है, अथवा रुकना ही प्राणायाम है इसका भेद समझाइये ?

उ० हे सौम्य! श्वास का रुकना ही प्राणायाम है और इसके चार भेद हैं। बाहर रुकना, भीतर रुकना, बाहर भीतर दोनो ही रुकना (अर्थात धनञ्जय प्राण को पकड़ने से दोनो का रुक जाना) इसी को रेचक कुंभक (बाहर ठहरना) पूरक कुंभक (भीतर ठहरना) स्तंभ कुंभक (धनञ्जय को पकड़ने से दोनो का रुकना) कहते हैं और यह ज्यों ज्यों अधिक रुकता जाता है, त्यों त्यों दीर्घ सूक्ष्म (मुख्य प्राण) से मिलता जाता है इसकी अधिक रुकने की और कम रुकने की पहिचान नासिका के बाहर और भीतर जाने की गर्मी से या अधिकता से अथवा गिनती में कि इतनी गिनती तक रुका अथवा इतनी देर में इतने श्वास सदा जाते हैं उन में इतने ज्यादा कम हुए इस प्रकार से की जाती है।

नोट—"अपाने जुह्वति प्राण प्राणेऽपान तथाऽपरे
प्राणाऽपानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणा ॥"
श्रीगीता जी



सू०-बाह्याऽऽभ्यन्तरविषयाऽऽक्षेपी चतुर्थः॥५१॥

२—अणाँ तीन ही वाताँ ने छोडने केवल ठे'रणो हीज श्वास रो सार शूं वत्तो सुधारो है। अणी ने हीज चौथे सुधार भी क' है। ऊँ ने हीज केवल कुंभक भी के'वे है।

---

(१) प्र० हे भगवान! आप ने तीन प्रकार प्राण के रुकने के उपाय कहे। इन सब से अधिक प्राणायाम कौनसा है कि जिस के प्राप्त हुए बाद प्राणायाम करने की आवश्यकता ही न रहे।

उ० जो बिना ही पूरक छोड के स्वतः ही प्राण ठहर जाय तब समझ लेना चाहिये कि अब प्राणायाम सिद्ध हो गया। यही चतुर्थ प्राणायाम है। इसे ही केवल कुंभक कहते हैं।

नोट—"प्राणापानौ समौ कृत्वा, नासाभ्यन्तर चारिणौ।"
(गीताजी)

"दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यं,
वायुः स्थिरो यस्य विनाप्रयत्नम्।
मनः स्थिरं यस्य विनावलम्बम्,
स एव योगी स गुरुः स पूज्यः॥

सू०—ततः क्षीयते प्रकाशाऽऽवरणम् ॥५२॥

भा०—अणी शूँ मूर्खता घटे है।

(?) प्र०—इन प्राणायामो से क्या होता है?

उ०—तमोगुण, रजोगुण आवरण कम होकर सतोगुण (ज्ञान) बढने लगता है।

सू०—धारणासु च योग्यता मनसः ॥५३॥

भा०—अणी शूँ मन थिरता ने धारणा करवा लायक भी हो जाय है अर्थात मन रा सुधारा (धारणा) र लायक भी मन हो जाय है।

(?) प्र०—चौथे प्राणायाम से क्या होता है। सतोगुण बढने से क्या होता है?

(नोट) यथाक्रम प्रत्याहार तो कैमुतिक न्याय से भी होता है।

उ०—मन निर्मल होकर धारणा के योग्य (मन जमा ठहरने के योग्य) हो जाता है।

सू०—स्वविषयाऽसंप्रयोगेचित्तस्य स्वरूपाऽनुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥५४॥

र—सुख दुखाँ मे भी इन्द्रियाँ मन रे आधीन रे'वा लाग जाय। ऊणी ने इन्द्रियाँ रो सुधारो अथवा प्रत्याहार भी वे'है। यो इन्द्रियाँ ने बा'रणे भटकणो छोड़ाय, मन रे साथ राखना शूँ भी व्हे है।

---

(१) प्र०—अब कृपाकर योग का पाँचवाँ अंग जो आपने प्रत्याहार कहा था, वह कहिये ?

उ०—इन्द्रियों का अपने अपने विषय (सुनना आदि) छोड़ कर चित्त के जैसा ही हो जाना (जिधर चित्त ठहरे उधर ठहर जाना) ही प्रत्याहार कहाता है।

(नोट) 'यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वश ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥"

गीताजी

सू०—ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥५५॥

उ०—इससे इन्द्रियें अपनी स्वतन्त्रता छोड़, चित्त के परम (बिलकुल) आधीन हो जाती हैं नहीं तो प्रत्याहार बिना ये चित्त को अपनी तरफ खींच लेती हैं।

(नोट) "तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥
इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥"

श्रीगीताजी

इति योगशास्त्रे द्वितीय पादे पातञ्जल प्रतिपादिका
लघु टीका समाप्ता।



है। क्यूके म्होटी चीज मही शूँ मही चीज मे शूँ आवे है, ने वणी मे ही पाछी समाय जाय है। अणी रो विचार नाम, अर्थ, ज्ञान सहित कर तदाकारता व्हे'जाणो भी सविचारा है, ने अणी मे भी नाम, अर्थ, ज्ञान, अलग कर देखणो निर्विचारा है अर्थात् प्रकृति भी जदी दृश्य व्हे'ने दीखवा लाग जाय, अर्थात् सब शूँ मही भी है, या ही प्रकृति व्ही'ने जदी याही निर्विचारा समापत्ति शूँ दीखवा लाग जाय, जदी अणी रा विकार री तो बात ही कई।

४—बारी की (सूक्ष्मता) री हद ठेट प्रकृति तक है, यूँ एक शूँ एक स्थूल है, ने एक शूँ एक सूक्ष्म, पण अठे सूक्ष्म शूँ मतलब शब्दादि विकल्पादि सेती व्हे'ने वणाँ विकाराँ ने छोड ने-पच्चिस तत्व रा चक्र पे बुद्धि चाल, ने चोईश तत्वाँ मे बुद्धि रमती रमती सूक्ष्म री कानी वधे, अणी ने सूक्ष्म विषय कियो। मिश्र पदार्थ, ने अविमिश्र पदार्थ। मिश्र पदार्थ विकार, ने अविमिश्र प्रकृति विकृति ने जाणणी चावे। यू प्रकृति मे मतो व्हे'णो सूक्ष्म विषयत्व गण्यो है। पण व्हे' अणी विधि शूँ।

(तन्मात्रा गंधादि) सूक्ष्म है वैसे सब से सूक्ष्म विषय किसे समझना चाहिये ?

उ० सूक्ष्म विषय की अवधि शून्य पर्यन्त है अर्थात सब से सूक्ष्म विषय अव्यक्त (शून्य) है।

—— —

बता कर नियम (दूसरा अंग) कहा। फिर सूत्र ३२–३३ मे इनको छोडने की इच्छा हो तो उसके भी त्याग का उपाय सूत्र ३४ मे उस इच्छा का भी त्याग करना कहा। फिर सूत्र ३५ से ३९ तक पाँचो यमो के यथार्थ सिद्ध होने का पृथक् पृथक् फल कहा। इसके उपरान्त सूत्र ४० से ४५ तक पाँचो नियमो के सिद्ध होने से जो फल होते हैं, वे अलग अलग कहे। फिर सूत्र ४६ आसन कह कर उसकी सिद्धि का उपाय बता कर सूत्र ४७–४८ मे उसकी सिद्धि का फल कहा। फिर सूत्र ४९, ५० और ५१ मे प्राणायाम की सिद्धि के फल कहे। फिर सूत्र ५४ ५५ मे योग का पाँचवा अंग प्रत्याहार कह कर उसका फल बता कर इस द्वितीय पाद को समाप्त किया। इसका मतलब मेरी समझ मे यह आता कि अभ्यास तो तीव्र हो और वैराग्य मंद हो उसके लिये यह [illegible] साधन (अभ्यास) पाद आपने कहा [illegible] इस मे प्रथम सिद्धान्त था बताया है कि मुख्य समाधि की योग्यता ही साधन का फल है। फिर अष्टाङ्ग योग जो कि एक से एक का सीढ़ी की [illegible] सिलसिला बंधा हुआ है अर्थात एक की सिद्धि और [illegible] का प्रारम्भ है यो बताया है और इस में भी आपने [illegible] खुलासा कर के योग व तत्व को करामलकवत् कर दिया है। [illegible] समझ मे इस साधन पाद के सिवाय भी साधन [illegible] आवश्यकता ही न पड़े। यदि कोई इनको साधने की [illegible] [illegible] परन्तु तो यह सब ही साधन ज्ञान की [illegible] मे [illegible]

॥ इति ॥

- [illegible] -

पाताञ्जल योग दर्शन



तृतीय (विभूति) पाद

सू०—देशबंधश्चित्तस्य धारणा ॥१॥

अ०—एक ठाणे मनने बाँध राखणो मनरो ठहराणो या धारणा-भाव है, ई ने एक बात मन में धार लेणो भी कहे है।

---

(५) प्र०—आपने कृपा कर के योग के आठ अङ्गों में से पांच अङ्ग क्रिया योग (यम नियम, आसन प्राणायाम और प्रत्याहार) तो फल सहित समझा दिये अब कृपा कर धारणा किसे कहते हैं सो कहिये ?

उ०—किसी एक जगह में [शरीर के भीतर या बाहिर] चित्त को लगा देना [लगाये रखना] ही धारणा है।

सू०—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥२॥

उ०—उसी स्थान मे (जहां धारणा की गई हो) चित्त का निश्चल (एक सा) बराबर लगा रहना ध्यान कहाता है।

सू०—तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥३॥

रा—आपो भूल ने मन रो वणी जगा' मे मिल जाणो समाध रो स्वरूप या समाधि बाजे है।

(३) प्र०—महाराज ! योग का अंग जो आप ने समाधि कहा था, उस भी कृपा कर आज्ञा कीजिए ?

उ०—इस प्रकार चित्त ऐसा ठहर जाय कि स्वयं आपको भी भूल कर मानो उसी पदार्थ रूप हो जाय, तब वही (ध्यान ही) समाधि कही जाती है, अर्थात् जब चित्त एक जगह लगाया जाता है तब वह धारणा कही जाती है। जब उस जगह मे ठहर जाता है तब ध्यान कहाता है और उसी मे चित्त के मिल जाने मे (तदाकार हो जाने मे) समाधि कही जाती है।

सू०—त्रयमेकत्र संयमः ॥४॥

फल कहिये। जैसा कि पहले पाँचों अंगों का आप ने कहा था ?

उ०—धारणा का फल ध्यान और ध्यान का फल समाधि है और ये तीनों इकट्ठे होने से संयम कहाते हैं। किसी स्थान में चित्त का ऐसा लग जाना कि वह मानो आप को भी भूल जाय, इस को भी संयम कहते हैं।



सू०—तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥५॥

२—यै ऊँडो विचार अथवा शूं समझ वधे छे।

---

(५) प्र०—जब ये तीनों साथ ही होने से संयम इस एक ही नाम से कहे जाते हैं तो इस संयम का भी क्या फल है सो कहिये।

उ०—हे सौम्य! संयम सिद्धि हो जाने पर पहले जो हमने विवेक ख्याति नाम की प्रज्ञा कही थी (जिसकी प्राप्ति के ही लिये अष्टाङ्ग योग (योग के आठों अङ्ग) कहे गये हैं) उस (विवेक ख्याति) का प्रकाश होता है।



उ०—उसी स्थान मे (जहा धारणा की गई हो) चित्त का निश्चल (एक सा) बराबर लगा रहना ध्यान कहाता है ।

सू०—तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥३॥

२—आपो भूल ने मन रो वणी जगा' मे मिल जाणो समझ रो सुधारो वा समाधि वाजे है ।

---

(५) उ०—आठवाँ योग का अग जो आप ने समाधि कहा था, उसे भी कृपा कर आज्ञा कीजिये ?

उ०—उस जगह चित्त ऐसा ठहर जाय कि स्वय आपको भी भूल कर मानो उसी पदार्थ रूप हो जाय, तब वही (ध्यान ही) समाधि कही जाती है, अर्थात् जब चित्त एक जगह लगाया जाता है तब वह धारणा कही जाती है । जब उस जगह मे ठहर जाता है तब ध्यान कहाता है और उसी मे चित्त के मिल जाने से (तदाकार हो जाने से) समाधि कही जाती है ।

सू०—त्रयमेकत्र संयमः ॥४॥

२—अणां तीनाँ रो ही एकट्ठो नाम ऊँडो विचार वा सयम वाजे है ।

---

(५) प्र०—हे भगवन ! इन धारणा ध्यान समाधि का पृथक् पृथक्

फल कहिये। जैसा कि पहले पांचों अङ्गों का आप ने कहा था ?

उ०—धारणा का फल ध्यान और ध्यान का फल समाधि है और ये तीनों इकट्ठे होने से संयम कहाते हैं। किसी स्थान में चित्त का ऐसा लग जाना कि वह मानो आप को भी भूल जाय, इस को भी संयम कहते हैं।

सू०—तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥५॥

—यह ऊंचा विचार अथवा शुद्ध समझ का वर्णन है।

(७) प्र०—जब ये तीनों साथ ही होने से संयम इस एक ही नाम से कहे जाते हैं तो इस संयम का ही क्या फल है सो कहिये।

उ०—हे सौम्य ! संयम सिद्ध हो जाने पर पहले जो तुम्हें विवेक ख्याति नाम की प्रज्ञा कही थी (जिसकी प्राप्ति के ही लिये अष्टाङ्ग योग (योग के आठों अङ्ग) कहे गये हैं) उस (विवेक ख्याति) का प्रकाश होता है।

सू०—तस्यभूमिषु विनियोगः ॥६॥

२— अणी समझ ने पगत्या पगत्या वधावणी चावे।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! आपने साधारण आज्ञा करी थी कि किसी जगह में इन तीनों को इकट्ठे करने से ही सयम होता है, सो कृपा कर यह कहिये कि किस जगह मे यह सयम करने से विवेक ख्याति नाम का सच्चा अनुभव प्राप्त होता है?

उ०—इस सयम को सीढी दर सीढी (सोपान क्रम) म करना चाहिये अर्थात् एक दम ऊँची बात मे भी चित्त लगा देने से वह वहाँ नहीं ठहर सकता और नीची मे लगाने से पीछा गिर जता है। इसलिये अपने अधिकार के अनुसार ही किसी दर्जे पर इस सयम (चित की स्थिति) को करना चाहिये, और एक दर्जा तय (पक्का) करके फिर आगे को बढना चाहिये ॥

(नोट)—इसी संयम को कितने ही भावना, मनन, वा विचार विशेष भी कहते हैं, यह जीवमात्र में होने पर भी मनुष्यो में विशेष और उनमें भी योगी मे अधिक होता है। योग के आठ अग ही आठ दर्जे समझने चाहिये। उन मे यह पहला दर्जा है। इस यम मे भी अहिंसा पहला है। इसमें भी अगुव्रत और परमाणु मे इस क्रम मे एक एक मे आगे का दर्जा। इनमे भी यम,

नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तक एक श्रेणी में समझे जाकर धारणा ध्यान, समाधि दूसरी श्रेणी में माने जाते हैं। इन में आगे एक दर्जा खास योग का विवेकख्याति है और उसके आगे परम योग-कृतकृत्यता-ही है और ये कुल चित्त की तबदीली (परिणाम) हैं। मूढ क्षिप्त विक्षिप्त एकाग्र, समाधि और निरोध ही यथाक्रम चित्त की भूमिका हैं और इन्हीं के अन्तर्गत योग के आठों अंग हैं, परम समाधि के लिये ये आठों अंग हैं।

सू०—त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥७॥

भा०—ये तीन ही पहलों से पांच ही पहलुओं [illegible] अन्तरङ्ग हैं।

(१) प्र०—इन दर्जों (सीढ़ियों) को कहिये ?

उ०—ये तीनों ही (धारणा, ध्यान और समाधि) पहले कहे हुए पांचों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार) से अन्तरङ्ग (योग के निकट [illegible]) हैं अर्थात् वे पांचों अंग स्थूलता के लिये होते हैं, वे बाहरी अंग (पांचों इन्द्रियों की तरह) हैं और ये तीनों भीतरी (तीनों अन्तःकरण की तरह) [illegible] हैं क्योंकि इन पांचों में तो शरीर [illegible] रहता है और इन तीनों से केवल [illegible]

होने से ये (धारणा, ध्यान और समाधि) तीनो योग के उन पाँचो (यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,) से यथाक्रम ऊँचे दर्जे के हैं।

सू०—तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥८॥

२—अखड महासुख तो अणाँ शूँ भी ऊँचो है।

---

(५) प्र०—क्या सब से मुख्य योग के निकट के ये ही तीनों अंग हैं, या इन से भी आगे कोई योग का निकट अंग है?

उ०—मुख्य योग के तो ये तीनो भी बाहरी अग ही हैं, अर्थात् योग (चित्तवृत्तियों का निरोध) दो प्रकार का है सम्प्रज्ञात, (विवेकख्याति) और असम्प्रज्ञात, इन्ही को सबीज और निर्बीज भी कहते हैं। उस में ये धारणा आदि तीनो सबीज योग के खास अंग हैं और निर्बीज के तो ये बाहरी अग ही हैं। भाव यह है कि विवेकख्याति (सबीज समाधि) संयम की स्थिरता के बाद ही आती है (संयम स्थिर हुए पहले नहीं होती) परन्तु निर्बीज बिना विवेकख्याति (सबीज) के नहीं आती (अर्थात् बिना विवेकख्याति (सबीज) पाये कोई केवल संयम से ही निर्बीज समाधि को नहीं पा सकता।

नोट—इनके (संयम के) आगे का दर्जा एक और है जिस को विवेकख्याति कहते हैं और उस के आगे खास योग आता है। खास योग जो निर्बीज समाधि है उसके निकट का दर्जा विवेकख्याति (सच्चा अनुभव) है और विवेकख्याति के पास का दर्जा यह (धारणा ध्यान समाधि) है अर्थात इन तीनों के बीच में एक विवेक-ख्याति नाम का दर्जा और है। फिर इस (विवेक-ख्याति) के बाद खास योग है खास योग निर्बीज समाधि को कहते हैं और इसके निकट का (प्राप्ति का) अंग सबीज (सम्प्रज्ञात) समाधि है और यह धारणा ध्यान, समाधि तो इस सम्प्रज्ञात—(सबीज विवेक ख्याति) समाधि का निकट का अंग होने से खास योग-जो निर्बीज समाधि है, उसका तो यह धारणा (एक दर्जा दूर का) अंग ही हुआ। अर्थात सर्वोपरि योग असम्प्रज्ञात (निर्बीज निरोध) है। इससे नीचे की सीढ़ी संप्रज्ञात (सबीज विवेक ख्याति) है और तीसरी सीढ़ी यह संयम समाधि है —

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

भ० गीता—

सू०—व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभव प्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥६॥

भा—मन रो आपे आवा रो स्वभाव छूट ने, देवे जणी रे आधीन रे'वा रो स्वभाव पडजाय, यो ही अखंड महासुख वाजे है। अणी ने ही मन रो स्वभाव बदल जाणो अर्थात निरोध परिणाम के' है।

---

५) प्र०—हे भगवन! मैं उस योग का खुलासा सुनना चाहता हूँ, कि जो खास योग है और जिसके यह धारणा आदि तीनों बाहिर के दूर के ही साधन गिने जाते हैं और यह भी आज्ञा करें कि यह समाधि वस्तु क्या है कि जिसमें ये धारणा ध्यानादि भी नहीं पहुँच सकते। हे भगवन! यह खास योग निर्बीज समाधि क्या है?

उ०—जब चित्त की वृत्तियों के सूक्ष्म अंश (संस्कार) भी विवेकख्याति के असर से रुक जाते हैं तब चित्त की इसी रुकने की हालत को निरोध कहते हैं और यही चित्तवृत्ति निरोध नाम का योग तुझे प्रथम कहा था। यह चित्त की ही एक हालत (परिणाम) है इसे ही निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

नोट—चित्त के संस्कारों के उठने की (बहने की चंचलता की) हालत को छोड़ कर स्थिरता की हालत में आजाना

हो सो नाम परम योग (निर्बीज समाधि) है। चित्त की इस हालत (गहरी संस्कार तबदीली) को निरोध परिणाम कहते हैं। यही चित्तवृत्तिनिरोध नाम से पहले कहा था और निर्बीज भी इसे ही कहते हैं।

सू०—तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥१०॥

टी०—मन में ऊँडी या बात जम जाता में पछे पाछो मन आप ही थाय सके है।

---

(७) प्र०—हे भगवन् ! इस प्रकार के चित्तवृत्ति निरोध से (निर्बीज परमयोग से) चित्त की हालत तबदील होकर पीछी नीची हालत में क्यों नहीं आती और जो चित्त की यह निरोध की हालत भी तबदील होती है तो यह निरोध निर्बीज (फिर पीछा न होने वाला) कैसे हो सकता है। निर्बीज समाधि नाम का जो योग है, वही सब से उत्तम उत्तम योग क्यों है? जब चित्त बहने की हालत का ([illegible]) स्थिरता की हालत में आजाता है तो फिर पीछा बहने की हालत में (चञ्चलता की हालत में) क्यों नहीं जाता यह निरोध की हालत स्थिर कैसे रहती है?

दृढ और सच्चे खयाल) जम जाते हैं कि फिर वहाँ उनके सिवाय अन्य किसी भी खयाल की समाप्ति कदापि हो ही नही सकती अर्थात् विवेक ख्याति के संस्कार मात्र ही जब रह जाते हैं, तब दूसरे कोई विचार न आकर वह एक ही (निरोध विवेक ख्याति के संस्कार की ही अखंड धारा बहती रहती है) इसी चित्त की हालत को निर्बीज (दूसरे खयाल से रहित चित्त की हालत) कहते है ।

(नोट) 'य लब्ध्वा चापरं लाभ मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥"

श्रीगीताजी

सच्चे अनुभव (विवेक ख्याति) के संस्कार इसमें ऐसी जड़ जमा लेते हैं कि फिर वे ही वे रहकर दूसरे झूठे अनुभव (अविद्या के संस्कार) वहाँ नहीं हो सकते इसमें संस्कार (भीतरी चित्त की हालत) तब्दील होती है अर्थात् चित्त अपनी असली हालत को पा लेना है ।

सू०—सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणामः ॥११॥

र—मन रा आपे आवणां, घट ने एक कानी रे'वा रा स्वभाव [illegible] यो मन रा नाम [illegible]) बदलणो बाजे है ।

---

(१) टि०—सम्प्रज्ञात समाधि तो विवेक ख्याति है, इसमें [illegible]

क्या संस्कार (गहरे विचार) हो जाते हैं कि जिनकी फिर तबदीली ही न होकर वे ही वे (एक ही प्रकार के) रह जाते हैं ? इस विवेक ख्याति सच्चे अनुभव) के विचार ऐसे क्या होते हैं कि जिनकी जड फिर नहीं उखड़ती अर्थात जिस विवेक ख्याति से यह निर्बीज हालत होती है वह सच्चा अनुभव (विवेक ख्याति क्या है, जब विवेक ख्याति की हालत में निरोध की हालत होती है तो विवेक ख्याति की हालत किस से होती है ?

३० – जब चित्त का आत्मा से अलग भान होकर आत्मा से (दृष्टा से) चित्त का मिश्रण (एकता) मिटने लग जाता है तब इसी चित्त की हालत को विवेक ख्याति या असम्प्रज्ञात समाधि के नाम से कहते हैं और यही हालत गहरे संस्कार (परसंख्यान) ऐसे डाल देती है कि फिर वह निरोध की हालत चित्त की कभी भी तबदील नहीं हो सकती।

(नोट) इस से बहुत ख्याल करने की हालत बदल कर चित्त की एकाग्रता की हालत हो जाती है। यह भी चित्त की एक प्रकार की हालत है कि जिसमें [illegible] अनुभवों या और ख्याल में चित्त की [illegible] हालत की तबदीली हो जाती है। [illegible] मिलकर [illegible] विवेक ख्याति में बाहरी विचार (नाकाबिल) [illegible] धारना (एकाग्रता ध्यान) की ही हालत के लिए रहने लग जाता है इसी से फिर वे ध्यान, (विचार) [illegible] पकड़ लेते हैं। [illegible] [illegible] [illegible]

(एक ही तरफ) चित्त लगने से एकाग्रता से विवेक-ख्याति होती है, इसमें चित्त की हालत बहुत ख़याल करने की तबदीली होकर एकाग्र (एक तरफ) हो जाती है।

सू०—ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतायाः परिणामः ॥१२॥

२—मन री चचलता में भी एक ही कानी आवता रेणा मन री अवस्था बदलणो वाजे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन ! कहाँ तक चित्त की हालत तबदील हो सकती है और इस दृढता की हालत में चित्त कैसे आता है ?

उ०—हे सौम्य ! फिर जब वह एकाग्रता ज्ञान की हालत दृढ होने लगती है, तब ज्ञान के सच्चे अनुभव के बीच में दूसरे विचार आने नहीं पाते, यही चित्त की हालत जब दृढ हो जाती है, तब निर्बीज समाधि परमयोग (अपनी असली हालत को) चित्त पा लेता है फिर चित्त वहाँ से नहीं हट सकता। जब तक चित्त अपनी असली हालत नहीं पा लेता है अर्थात निर्बीज समाधि नहीं होती है, तब तक फिर उत्तर आने की निर्बलता रहा करती है।

(नोट) बारबार एक ही तरह के विचार उठते रहना और

उनके बीच में दूसरे विचारों का न आना ही चित्त की एकाग्रता की हालत कही जाती है। यह एकाग्रता की हालत संयम के अधिक ठहरने से आती है और एकाग्रता की हालत अधिक ठहरने से सम्प्रज्ञात (विवेक ख्याति) की हालत होती है। विवेक ख्याति और [illegible] रह जाने से निर्बीज हालत हो जाती है और तब योगी कृतकृत्य हो जाता है।

—०◯०—

सू०—एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थाः परिणामा व्याख्याताः ॥१३॥

अ०—इसी से हरेक चीज़ का स्वभाव, नाम, व अवस्था [illegible]

(७) प्र०—क्या ये हालतें चित्त की ही बदलती हैं [illegible] किसी की बदलती हैं।

उ०—इसी तरह देखने की इन्द्रिय और [illegible] वाली सब चीज़ें अपनी अपनी हालत [illegible] हैं अर्थात् जो कुछ दीखता है [illegible] की तब्दीली (परिणाम) ही है।

सू०—शान्तोदितोऽव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४॥

२—सारा हरफेर में भी जणी रो हेरफेर नी व्हे' वो ही स्वभाववाजे है।

---

(७) प्र०—ये हालतें किस की तबदील होती हैं ?

उ०—जो अब होने वाली, होगई, और हो रही है, हालत में अपनी खासियत बिना छोड़े ही अपनी हालत में बदलता रहता है। वही खास हालत धर्मी के नाम से कही जाती है और उसकी हालतें उसका धर्म कहाती हैं। इसी खास हालत को प्रकृति द्रव्य आदि नाम से भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत इसी की हालतें हैं, और इसकी कितनी हालतें हो सकती हैं, यह कोई नहीं जान सकता। क्योंकि इसकी कोई हद नहीं है।

सू०—क्रमाऽन्यत्वं परिणामाऽन्यत्वे हेतुः ॥१५॥

२—अणी स्वभाव में हेरफेर पणो तो तरंगाँ री लपटेर शू है।

---

(८) प्र०—वह खास हालत तबदील नहीं होकर भी अनेक हालत तबदील कैसे करती हैं अर्थात् एक धर्मी के अनेक धर्म कैसे होते हैं ?

उ०—सिलसिले की तबदीली (क्रमान्यत्व) ही हालत तबदीली का कारण है अर्थात यद्यपि खास हालत

एक ही है, तो भी उसमे सिलसिले की तबदीली है उसे ही हालत तबदीली कहते हैं। जैसे मिट्टी है वह मिट्टी ही है, उसका एक बर्तन बनाने से वह मिट्टी बर्तन की हालत मे तबदील होकर भी अपनी मिट्टी की हालत में रहती ही है फिर उस बर्तन को पकाने पर वह पक्के बर्तन की हालत मे होकर भी है मिट्टी ही। फिर वह फूट कर ठीकरी बनाने की तर्ज की हालत मे हो जाती है। यही सिलसिले में (क्रम से) तबदीली (मिट्टी, कच्चा बर्तन, पक्का बर्तन और नई) की क्रम से तबदीली कही जाती है और यो हालत की तबदीली होने पर भी वह है मिट्टी ही, इसका मतलब यह है कि एक कोई ऐसी वस्तु है कि उस मे अनन्त (बेशुमार) हालते तबदील कर लेने की ताकत है और जो कुछ पहले हो गया हो रहा और होगा वह कुल और कुछ नही, उसी एक वस्तु की हालत तबदीली कहते है। उसे ही अव्यक्त मायाशक्ति प्रधान आदि अनेक नाम से लोग कहा करते हैं।

२०—परिणामत्रयसंयमादतीतानागत-ज्ञानम् ॥१६॥

और ये दीखने वाले रंग शब्द आदि एक ही वस्तु की केवल हालत तबदील हो रही है कि जो ऊँचा योग का अधिकारी नहीं होने से इस दीखने वाले शक्ति के उलट फेर को ही बडी बात मानता है। उसको योग मे विश्वास, बिना प्रत्यक्ष के नही हो सकता और बिना विश्वास आगे बढ नही सकता। इस लिये ऐसे अधिकारी के लिये मै अब प्रश्न करता हू कि आपने जो आज्ञा की थी कि धारणादि तीनो संयम की सिद्धि हो जाने से सच्चा अनुभव (विवेक ख्याति) मिलता है और उस संयम को सीढी दर सीढी बढाना चाहिये और सब से संयम की ऊची सीढी विवेक ख्याति नाम का सच्चा अनुभव है। परन्तु किसी की यह इच्छा हो कि जो बात होने वाली है अथवा हो गई, उसे जानू तो उसे क्या करना चाहिये अर्थात मंद अधिकारी इन्हीं तबदील होने वाली बातो की इच्छा किया करते हैं। ऐसा मनुष्य अष्टाङ्ग योग साधन कर अगर यह इच्छा करे कि मुझे होने वाली बात और होगई उसकी मालूम हो जाय तो योग मे उसकी यह इच्छा कैसे पूरी हो सकती है ?

—हे सौम्य ! प्रत्येक वस्तु की तीन तरह की तबदीली होती है। पहली हालत की पहली तबदीली और पहली हालत को बदल कर दूसरी में आना इसे ही धर्म परिणाम भी कहते हैं। फिर उस दूसरी हालत में कुछ ठहरने की भी प्रतीति होना लक्षण परिणाम कहलाता है। फिर तीसरी हालत में जाना

अवस्था परिणाम कहाता है। इन तीनों हालतों में संयम करने से होने वाली और जो होगई, वह बात मालूम हो जाती है।

सू०—शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥१७॥

अ०—बोली बोली रा अर्थ ने बोली बोली रा विचार मिल्या थका रह्या ज्यूँ दीखे है। पण आँ रा न्यारा न्यारा रूपां रो विचार करवा सूँ सबाँ री बोली समझवा लाग जाय।

(७) प्र०—कोई चाहे कि मुझे पशु पक्षी तथा सब जन्तुओं की भाषा भी समझ पड़ने लगे तो उसे क्या करना चाहिये?

उ०—शब्द, शब्द का अर्थ और उसका ज्ञान सब एक से मिले हुये मालूम होते हैं। इन तीनों में अलग अलग संयम करने से सब जीवों की बोली समझ में आ जाती है?

सू०—संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजाति-ज्ञानम् ॥१८॥

रा—अन्त करण रो ऊँडो विचार करे तो पे'ली रा जन्म री खबर पड जाय।

(१) प्र०—पूर्व जन्म का ज्ञान कैसे होता है–इस जन्म से पहले मैं कौन और क्या था यह कैसे मालूम होता है?

उ०—संस्कार (इच्छा) से संयम करने से पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है।

सू०—प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥१९॥

रा—पराया रा विचार रो ऊँडो विचार करे तो पराया रा मन री खबर पड़ जाय।

(२) प्र०—किसी दूसरे के मन की बात कैसे मालूम होती है?

उ०—उसके चित्त में संयम करने से उस में क्या क्या भाव है यह मालूम हो जाता है।

सू०—न च तत्सालम्बनं तस्याऽविषयी-
भूतत्वात् ॥२०॥

[illegible]—पण आणी शूँ आने री ख़बर नी पड़। क्यूं क [illegible] [illegible]
[illegible] विचार करे वणी री हीज ख़बर पड़े है।

(७) प्र०—हे भगवन ! यो पराये मन की बात जानने से [illegible]
यो भी मालुम हो जाता है कि नही कि इनके मन में
यह बात है और वह इस प्रकार की है। जैसे किसी
के चित्त मे प्रीति है यह तो मालूम होगया पर किस से
प्रीति है और जिससे प्रीति है वह वस्तु कैसी है और
उसकी प्रीति इससे है कि नहीं यह भी क्या इसी [illegible]
में संयम करने से ज्ञान हो जाता है या [illegible] [illegible]
उपाय है ?

उ०—हे सौम्य ! पराये चित्त में संयम करने से [illegible] [illegible]
की हालत की मालूम होती है कि इसमें राग [illegible]
आदि क्या है। फिर इस राग [illegible] में संयम [illegible]
यह मालूम पड़ती है कि किससे है राग [illegible] है। [illegible]
उसमें संयम करने से मालूम पड़ती है। [illegible] [illegible]
है। यों आगे से आगे संयम करना पड़ता है। [illegible]
सीधी होकर मालूम नहीं प[illegible]ती।

सू०—कायरूप संयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशाऽसंप्रयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥२१॥

२—अलोप व्हेवा रो उपाय यो है के शरीर रा रंग में ऊंडो विचार कर रंग ने छिपाय लेवे, जणी शूँ दूसरा ने आपणो रंग नीं दीखे।

---

(१) प्र०—कोई यह चाहे कि मुझे कोई देख न सके अर्थात अन्तर्धान हो जाऊँ तो उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—अपने शरीर के रंग में संयम करने से वह रंग छिप जाता है तब दूसरे की आँख में वह रंग आता ही नहीं। इससे योगी को कोई देख नहीं सकता। यों ही शब्द में संयम करने से उसकी बोली कोई नहीं सुन सकता, इसी प्रकार सब तरह से वह छिप सकता है।

सू०—सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥२२॥

२—शरीर छूटण री खबर पावणी व्हे तो कर्म री धारा, ने सोपक्रम निरुपक्रम पे ऊँडो विचार करे अथवा उपद्रवां पे विचार करे।

---

(२) प्र०—मरने की कैसे मालूम हो सकती है ?

उ०—हर एक के कर्म दो तरह के होते हैं—कुछ कर्म तो बाहर आने के लिये (फल देने को) तैयार होते हैं अर्थात जल्दी फल भुगताते है और कुछ विलम्ब से। इन दोनो प्रकार के कर्मों मे संयम करने से मृत्यु का ज्ञान होता है अर्थात विपरीत हालत मे भी मृत्यु की मालूम हो जाती है।

सू०—मैत्रादिषु बलानि ॥२३॥

०—मैत्र, दया, व हर्ष आदि तीनों पे कहो विचार करके [illegible] वर्गी र ई तीन ही आर्धान को जाय।

---

(५) प्र०—कोई यह चाहे कि मै किसी विरोधी से मित्रता कर दूँ या मुझ से शत्रु भी मित्रता कर लो [illegible] करना चाहिये ?

उ०—मैत्री, करुणा मुदितादि और यम नियम [illegible] पहले कहे थे उनमे से जिसमे संयम करे [illegible] योगी प्राप्त कर लेता है। मित्रता की भावना से [illegible] की ताकत योगी मे आ जाती है, जिससे [illegible] का चाहे जिससे चाहे सो मित्रता कर सकता है [illegible] ही करुणादि सब समझ लेना चाहिये।

सू०—बलेषु हस्तिबलादीनि ॥२४॥

२—बळ पे ऊँडो विचार करे तो चावे जतरो (हाथी रो) बळ आय जाय।

---

(५) प्र०—कोइ चाहे कि मेरे मे हाथी के समान बल पराक्रम हो तो उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—हाथी के बल मे संयम करने से हाथी का बल योगी मे आजाता है। यों ही जिसके बल की इच्छा हो उसी के बल मे संयम करने से उसी का बल प्राप्त हो जाता है।

सू०—प्रवृत्त्याऽऽलोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहित-विप्रकृष्टज्ञानम् ॥२५॥

[illegible]—छोटी री, नजीक री, ने आळगा री चीजाँ देखणी चावै तो मायला उजाळा पे ऊँडो विचार करे।

---

(६) प्र०—सूक्ष्म आदि, दूर अथवा छिपी हुई (गड़ी हुई) वस्तु का ज्ञान कैसे होता है ?

उ०—ज्योति प्रवृत्ति जो सात्त्विक प्रकाश पहले कहा था, उसमें संयम करने से सूक्ष्म या आड़ में आई हुई और दूर की वस्तु दीखने लग जाती है अर्थात् अन्तर प्रकाश से सूर्य चन्द्र नक्षत्र मणि आदि दीखने लगते हैं।

नोट—[illegible] में कही सो विशोका है, यह [illegible] में [illegible] है।

सू०—भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥२६॥

२—सूरज पे कैसा विचार कर ना नाम [illegible] लाक [illegible] जाग जाय।

(१) प्र०—हे भगवन! [illegible] [illegible] आदि [illegible] कैसे मालूम [illegible] पड़ता है?

उ०—सूर्यद्वार में संयम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है

सू०—चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥२७॥

२—चन्द्रमा में कैसा विचार [illegible] [illegible] खबर पड़ जाय।

(१) प्र०—तारे आकाश में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

उ०—चन्द्रमा में संयम करने से [illegible] [illegible] मालूम होती है।

सू०—ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥२८॥

सू०-नाभिचक्रे कायव्यूहाज्ञनम् ॥२९॥

१—डूंठी री गोलाई पे ऊंडो विचार करवा शूँ शरीर री बणावट री खबर पडे।

---

(१) प्र०—शरीर की बनावट की कैसे मालूम होती है ?

उ०—नाभि चक्र मे संयम करने से शरीर रचना का ज्ञान हो जाता है।

सू०—कंठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥३०॥

१—कंठ री खाडा पे ऊंडो विचार करवा शूं भूख तरस नी लागे।

---

(१) प्र०—भूख प्यास न लगे कर शरीर का बल और तेज बना रहे, यह इच्छा हो तो क्या करना चाहिये ?

उ०—"जाके लागे न भूखा पियासा।
अतुलित बल तनु तेज प्रकाशा ॥"

उ०—कंठ के गड्ढे मे संयम करने से स्थिरता (दृढता) होती है।

सू०—कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥३१॥

का

उ०—कूर्म नाम की नाड़ी–जो कण्ठ के नीचे है उसमें संयम करने से स्थिरता (दृढ़ता) आता है।

सू०—मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥३२॥

भा०—माथा की ज्योति में [illegible] संयम करने से [illegible] महात्मा का दर्शन हो जाय।

---

(१) प्र० जो सिद्ध लोग हैं वे [illegible] की सिद्धि वाले [illegible]

उ० कपाल (मस्तक) के प्रकाश में संयम करने [illegible] पुरुष [illegible] सिद्ध [illegible] मिलता है)।

सू०—प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥३३॥

मालूम हो अथवा कहाँ संयम करने से क्या फल (सिद्धि) होता है। यह कैसे मालूम होजाय?

उ०—प्रातिभ नाम का ज्ञान जो साधक को स्वयं ही होता है उस में संयम करने से सब ऊपर कहे ज्ञान (सिद्धियें) हो जाते हैं। प्रातिभ नाम एक तारे का है, जो स्वयं ही योगी को दीखता है। यह मालूम होजाता है कि अमुक संयम में अमुक सिद्धि होती है।

सू०—हृदये चित्तसंवित् ॥३४॥

[illegible] (कमल पे [illegible] विचार करता [illegible] मन [illegible] [illegible]।

प्र०—[illegible] चित्त [illegible] का ही नाम कहते हैं। [illegible] चित्त की मालूम कैसे पड़ती है अर्थात् इस का ज्ञान [illegible] होती है?

उ०—[illegible] संयम करने से चित्त का ज्ञान होजाता है।

सू०—सत्वपुरुषयोरत्यन्ताऽसंकीर्णयोः प्रत्ययाऽविशेषो भोगः परार्थत्वात्स्वार्थ-संयमात्पुरुषज्ञानम् ॥३५॥

२—मन तथा मन से दीखे ज्यों, बिलकुल नां भिन्न। पर या ज्ञान नी समझावा से ही दुख सुख भोगणा पड़े है। पर वर्णी ने भोगणा पड़े ऐसा पर ऊँडो विचार करता आत्म ज्ञान हो जाय।

---

(५) प्र०—पुरुष (आत्मा) का ज्ञान कैसे होता है अथवा किस ज्ञान से क्या होता है ?

सू०—ततः प्रातिभश्रावणवेदनाऽऽदर्शास्वाद-
वार्ता जायन्ते ॥३६॥

[illegible]—[illegible] आत्म ज्ञान को जदी उपजे, [illegible], [illegible], [illegible] ने [illegible] [illegible] [illegible] लागे है ।

[illegible]—हे भगवान ! यो [illegible] आत्मज्ञान होने पर फिर
क्या होता है ?

[illegible]—जब [illegible] आत्मज्ञान होने लगता है तब [illegible] [illegible] ([illegible]) संयम करने से बिना ही [illegible] [illegible] [illegible] आजाती है और [illegible] नजदीक की और [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] प्राप्त होता है, अर्थात् [illegible] [illegible] और [illegible] नहीं रहती ।

सिद्धियें भी प्राप्त होजाती हैं और फिर आत्म ज्ञान भी इसी स्वार्थ संयम से हो जाता है ?

उ०—जिसका चित्त आत्माकार होने लगता है उस योगी के तो ये सिद्धियें विघ्न हैं। क्योंकि बीच में पड़ कर आत्माकार होने से (रुकने से) उस चित्त का विघ्न होता है और जिसका चित्त चपल है उसके लिये ये व्युत्थान में सिद्धियें ही हैं कि उसे इन के प्राप्त से आनन्द हो जाता है।

सू०—बंधकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥३८॥

सू०—ततः प्रातिभश्रावणवेदनाऽऽदर्शास्वाद-वार्ता जायन्ते ॥३६॥

भा०—यूँ आत्म ज्ञान व्हे' जदी उपज, सुणणो, अटकणो, दीखणो स्वाद, ने सुगन्ध, ई घणा वत्ता वत्ता आवा लागे है।

---

(१) प्र०—हे भगवन ! यों विलक्षण आत्मज्ञान होने पर फिर क्या होता है ?

उ०—जब ऐसा आत्मज्ञान होने लगता है तब अर्थात स्वार्थ में (मेरा इस भाव में) संयम करने से बिना ही पढ़े लिखे सब विद्या स्वतः आजाती है और दूर नजदीक की और अलौकिक बातें सुनना, छूना, देखना, चखना और सूँघना प्राप्त होता है, अर्थात उसके मन और इन्द्रियों की रोक टोक कहीं नहीं रहती।

(नोट) पुरुष ज्ञान के पूर्व प्रातिभ पाद १ सूत्र ३६ मे कहा सो और ३।३० में कहा सो प्राप्त होती है। इसे ही विषयवती प्रवृत्ति कही है १।३५। से १।३६। उत्कृष्ट है।

सू०—ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥३७॥

सिद्धियें भी प्राप्त होजाती हैं और फिर आत्म ज्ञान भी इसी स्वार्थ संयम से हो जाता है ?

उ०—जिसका चित्त आत्माकार होने लगता है उस योगी के तो ये सिद्धियें विघ्न हैं। क्योंकि बीच में पड़ कर आत्माकार होने से (रुकने से) उस चित्त को हिला देती हैं और जिसका चित्त चपल है, उसके लिये ये सब वास्तव में सिद्धियें ही हैं कि उसे इन से योग में विश्वास दृढ़ हो जाता है।

३८—बंधकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥३८॥

अर्थात् चित्त सर्व व्यापक होने पर भी कर्म बंधनो से एक ही शरीर मे बंधा रहता है। तब समाधि से वे कर्मबंध खुल जाते हैं और आने जाने का रास्ता मालूम हो जाता है, तब पर शरीर मे प्रवेश करना सुगम हो जाता है (ये दोनो बाते समाधि से होतीहैं)

—०—

सू०—उदानजयाज्जलपंककंटकादिष्वसंग उत्क्रांतिश्च ॥३६॥

अ०— [illegible] ने आधीन कर लेवे तो पाणी कादा (कीचड़) और कांटों पे [illegible] चाल शके। मन चाहे जहां शरीर [illegible] पड़ा जाय।

---

(४) प्र०—पानी पर चलना किसी कंटक आदि पर भार बिना दिये ही उस पर होकर निकल जाना, सहज में शरीर का [illegible] त्यागना कैसे होता है ?

—समानजयाज्ज्वलनम् ॥४०॥

—यूँ डूँठी ग वायरा ने आधीन कर ले तो तेज वधे।

प्र०—योगी परम तेजस्वी कैसे होता है ?

उ०—समान नाम का वायु जो नाभि में रहता है उसे आधीन कर लेने से योगी अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता है।

—श्रोत्राऽऽकाशयोः सम्बन्ध संयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥४१॥

सू०—कायाऽऽकाशयोः सम्बन्ध संयमात् लघु तूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥४२॥

रा—शरीर, ने आकाश री मिलावट पे विचार करे तो फोरा रुई रा तार सरीखो वण ने आकाश में उड शके।

(२) प्र० आकाश में उड़ना चाहे तो किस प्रकार उड़ सकता है?

उ० शरीर और आकाश के संबंध में संयम करने से और हलके (तूल) पदार्थ में संयम करने से आकाश में उड़ सकता है अर्थात् हलका और बारीक हो जाता है।

सू०—बहिरकल्पितावृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥४३॥

से बना कर इसी में ऐसा भाव कर लेवे और जब यह भाव दृढ़ हो जाय तो इसे महा विदेहा धारणा कहते हैं और इस धारणा से चित्त के शुभाशुभ (मल रूप) परदे भी हट जाते हैं अर्थात बाहर बिना ही कल्पना के वृत्ति हो जाने से महाविदेहा धारणा होती है और इस से बुद्धि (चित्त) के आवरण (पर्दे) हट जाते हैं।

सू०—स्थूलस्वरूपसूक्ष्माऽन्वयार्थवत्त्वसंयमाद्-भूतजयः ॥४४॥

[illegible]—ई सब चीजों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वर्णों में [illegible] [illegible] [illegible] फेर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दारते हैं। [illegible] [illegible] विचार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आधीन हो जाय।

---

(५) प्र०—आकाश आदि पंच महाभूत (पाताल [illegible] [illegible]) आधीन कैसे होते हैं?

पाँचो का स्वरूप शब्दादि पाँचो तन्मात्रा मे है इन मे तीनो गुण (सत्व रज तम) व्यापक हैं और ये सब पुरुष के लिये हैं, ज्यों ज्यों क्रम से सयम बढ़ाता जायगा त्यों त्यों ही ये भूत आधीन होते जायंगे।

सू०—ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मा-नभिघातश्च ॥४५॥

भा०—अणी सूं आठ ही सिद्धियाँ मिले ने शरीर रा गुण वां, ने ई शरीर रा धर्मा ने दुःख नी देवे।

(१) प्र०—अणिमा (सब से सूक्ष्म होना) गरिमा (बहुत भारी होना) लघिमा (बहुत हलका होना) महिमा (बहुत बड़ा होना) प्राप्ति (चाहे जिसे पा लेना) प्राकाम्य (इच्छा पूरी हो जाना) वशित्व (पाँचो भूत और इनसे बने प्राणियों का वश कर लेना) ईशित्व (बनाना और बिगाड़ सकना) तथा कामावसायित्व (सत्य संकल्प होना) आदि सिद्धियाँ कैसे मिलती है ?

उ०—इस सूत्र के अनुसार क्रम से भूत जय होने से क्रम से अणिमादि आठों सिद्धियें प्राप्त होती हैं और इन पाँचों भूतों की रुकावट योगी के नहीं रहती और काय सम्पत् भी प्राप्त हो जाती है।

होता है इस में क्या मिला हुआ है और क्यों है जैसे कि जैसे जानना यही ग्रहण कहाता है उसका स्वरूप (जानने का काम) ज्ञान है और यह अहंता के लिये ही देखता है। उस अहंता में तीनों गुण मिले हैं और तीनों गुण पुरुष के वास्ते हैं, सो क्रम से ग्रहण स्वरूप अस्मिता अन्वय और अर्थवत्व में संयम करने से इन्द्रिय का ज्ञान हो जाती है। यों ही पाँचों इन्द्रियों का समझना चाहिये।

सू० ४८—ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥४८॥

अर्थात् हर एक चीज जड चेतन पर हुकूमत कर सकता है।

**सू०—सत्वपुरुषान्यता ख्यातिमात्रस्य सर्व-
भावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥४९॥**

गु०—देखे ज्यां, ने दीखे ज्यां त्यारा जणाय जावा थी सर्वो नो अधिकार, ने सर्वो ने जाणवा वाळो कहेवाय जाय।

---

(७) प्र०—यो मन का वश प्राप्त होने पर और सब जान लेने पर भी जब योगी एक तरफ जायगा या रहेगा तो दूसरी तरफ की क्या मालुम पडेगी। परन्तु ऐसा क्या उपाय है कि हाथ के आँवले के मुआफिक ही सब जगह का एक ही साथ जान सके ?

उ०—प्रकृति और पुरुष (दृष्टा और दृश्य) के अलग अलग मालूम होने ही (दृष्टा दृश्य का विवेक होने लगता है तब ही) सम्पूर्ण विश्वाधार और सर्वज्ञ योगी हो जाता है।

सू०—तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥५०॥

उ०—इस से भी वैराग्य होने से (इस में भी तृष्णा न रहने से) ही दोष (दुःख) बीज (अविद्या अज्ञान) नाश हो जाता है और तब ही पुरुष निरालस हो जाता है यही (कैवल्य) स्वरूपावस्थान है। इसे ही मोक्ष समझना चाहिये अर्थात अपने से सब संसार को (प्रकृति को) देखना विवेकख्याति है और इस देखने से भी पुरुष का निरालस संयोग रहित होना ही परम ज्ञान है।

सू०—स्थान्युपनिमंत्रणे सङ्गस्मयाऽकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥५१॥

आ लगती है। इसी से इन्हें विघ्न कहा है (फिर पीछा सब दुखों में पड़ जाता है) और एक यह भी सावधानी साथ ही में रखनी चाहिये कि सिद्धियों के त्यागने का घमंड भी न आ जाय। क्योंकि इनके त्यागने का घमंड भी वैसा ही हानिकारक है जैसा इनका सेवन।

सू०—क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजम् ज्ञानम् ॥५२॥

२—छोटी से छोटी चाल न [illegible] प्रचार करवा से सोची समझ आदि है।

---

५) प्र०—हे भगवन्! यह कैसे हो सकता है। [illegible] सिद्धियों को त्यागना ही कठिन और फिर [illegible] अभिमान न होना इससे भी कठिन है। [illegible] में क्या करना चाहिये?

जदी पे'लीं माफिक एकतत्व रा अभ्यास करता करता समापत्ति तक पो'च जाय, ने वणी में भी निर्विकार समापत्ति सूक्ष्मविचार भी आत्मा रे दृश्य व्हे'ने दृष्टा व्हेवा रो दावो छोडवा लाग जाय, जदी जाणणो के अबे निर्विचारा समापत्ति री स्पष्टता व्हे'गई है। अणी हालत में अबे जाणे आत्मा हीज स्वयं आप दृष्टापण ने नी छोडवा पे दृढ़ व्हे'गयो व्हे' ज्यूँ व्हे'जाय है, अथवा जो तरंग दृष्टा व्हेवा ने आवे वा ही दृश्य वण जाय. जाणे काळीनाग रा माथा पे भगवान् रो नृत्य व्हे'रियो है। काळी, काटवा ने फण उठावे उठावे जतरे तो भगवान् वणी पे ही चढ्या थका लाधे। श्री राधिकाजी रो प्रेम कृष्ण में, ने श्रीकृष्ण रो प्रेम राधिकाजी में व्हेवा पे भी अबे श्री राधिकाजी रो मान, ने श्रीकृष्ण भगवान रो मनावणो अध्यात्म प्रसाद वाजे है। अठा पे'ली री में फड़क फड़क कोशिश रे'ती ही के दृष्टा में सब है, पण अध्यात्मप्रसाद व्हेवा पे कोशिश ही छूट जाय, आपो आप ही दृष्टा में पण व्हेवा लाग जाय। अणी ने के'वे है, निर्विचार री स्वच्छता और आत्मा (सम्बन्धी अध्यात्म) री कृपा वा प्रसाद वा प्रसन्नता।

४—जदी चार ही सवितर्का निर्वितर्का ने सविचारा निर्विचारा सबीज है तो निर्बीज कंकर ने कशी व्ही? जदी

निर्मल योगी प्राप्त कर लेता है, तब उसे भी भीतरी अनुभव मिलने लगता है। इसी को अध्यात्म प्रसाद कहते है। अर्थात निर्मल निर्विचार में अध्यात्म प्रसाद मिलता है।

(सूत्र) ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा॥४८॥ ... [illegible] तत्र

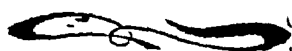
[illegible] ज्ञानदीपेन भास्वता॥

उ०—यह सब विघ्नों से तारनेवाला ज्ञान है। इसीसे इसे तारक कहते है इसी से सब जाना जाता है इसलिये इसे सर्व विषय भी कहते है। सब की तबदीली भी इसी से मालुम होती है इसी से इसे सर्वथा विषय भी कहा है। एकदम (विनाक्रम) सब मालुम होने से इसे अक्रम भी कहते हैं। यह ज्ञान विवेक पैदा होने से इसे विवेकज ज्ञान भी कहते है अर्थात् [illegible] के आखिर की मुआफिक सम्पूर्ण दृश्य (प्रकृति) का इसमें ज्ञान हो जाता है और इसी से यह स्वामी प्रकृति के विघ्नों से नहीं फसता यही पूर्ण ज्ञान है।

[illegible]—सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥५५॥

[illegible]—जदी विचार अर्थात् निर्मल हो जाय व [illegible]
[illegible] व्यवावाळो निर्मळ व्याग्रो हो जाय [illegible]
अर्थात् विचार री निर्मळता [illegible] [illegible]
[illegible] मेल री [illegible] भाव।

विभूतिये होकर होवे वा विना ही विभूतिये होवे अर्थात् यह कोई जरूरी नही है कि इस प्रकार का विवेकज ज्ञान होने बाद ही मोक्ष होता है मोक्ष (कैवल्य) तो सीर्फ सत्व (दृश्य) और पुरुष (दृष्टा) की एक सी शुद्धि अर्थात् बिलकुल पृथकता मे ही है, फिर वह चाहे जिस प्रकार से होवे बस यही परम योग है। पुरुष और प्रकृति का निखालस कैवल्य होना जो कि अयत्न स्वाभाविक ही है।



योगसूत्र

अथ चतुर्थ (कैवल्य) पाद

सू०—जन्मौषधिमन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः ॥ १॥

भा०—जन्म से, औषध से, जप से, [illegible] से [illegible] विचार करता से सिद्धियाँ होती हैं अर्थात मन का एक (शक्ति) [illegible] है [illegible] हैं।

(५) प्र०—हे भगवन! आपने संयम से अनेक प्रकार की सिद्धि आज्ञा करी। अब यह आज्ञा कीजिये कि संयम के सिवाय और भी कोई सिद्धिये होने का [illegible] है या नहीं अर्थात सिद्धिये संयम से होती हैं या और भी [illegible] प्रकार हैं। सिद्धिये कुल कितनी प्रकार की होती हैं [illegible] पुरुष की समान शुद्धि ही परम सिद्धि आपने [illegible] करी थी। अब यह आज्ञा करिये कि सिद्धि संयम से (ध्यान से) ही होती हैं या इसके और भी प्रकार हैं।

उ०—पाँच प्रकार से सिद्धिये होती हैं [illegible] तप और समाधि (ध्यान) से [illegible] जन्म से ही सिद्धि (हालत [illegible]) [illegible] किसी का औषध से किसी का [illegible] पिता को पाने की इच्छा [illegible]

सिद्धि (हालत तबदीली) मिलती है। इन पांचो में संयम की ही सिद्धि मुख्य है।

सू०—जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥२॥

२—जो हेरफेर स्वाभाविक ही व्हे' है अर्थात कोई कठा शूं नवी बात नी आय जाय है, पण ज्यूँ पाणी रो स्वभाव ऊंडो ने वारादी रो ऊंचो है, यूं ही प्रकृति रा भी या स्वभाव हीज है।

---

(१) प्र०—हे भगवन ! आपने प्रथम कहा था कि शरीर और इन्द्रियों की हालत तबदीली (परिणाम) एक हालत से दूसरी हालत में हो जाना ही सिद्धियें है। अब यह हालत तबदीली किससे, क्यों होती है अथवा इन पाँचों कारणों में क्यों होती है, सो कृपा कर कहिये ?

(नोट) ये सिद्धियें क्या है (क्या वस्तु है) इस दूसरे प्रश्न का उत्तर में प्रथम सूत्र है।

निद्रियें कहाती हैं और यह प्रकृति व्यापक होने से प्रकृति में ही होती है।

— — —

सू० — निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रियवत् ॥३॥

उ०—कृषक बीज [illegible] उगवाने मेला करता है। [illegible] (नाली के पास ही जाता तो) अपने स्वभाव से जल बहता है।

———

(५) प्र०—एक हालत से दूसरी हालत में शरीर इन्द्रिये [illegible] किसी कारण के बिना ही होती हैं या [illegible] कारण ही सब की यह तब्दीली एक ही [illegible] नहीं होती अथवा यह परिणाम [illegible] निमित्त [illegible] जाता है?

ओर से वह रही है। सिर्फ धर्म अधर्म के निमित्त से (रोक बाँध ले) वैसी ही प्रकार की तबदीली हो जाती है अर्थात् प्रकृति का कोई कारण नहीं होने पर भी चित्त के शुभाशुभ से उसकी रोक और पवाह होता रहता है जैसे किसान से खेती होती है। यद्यपि किसान नया कुछ नहीं करता।

सू०—निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥४॥

रा०—म्हांपणो मन रा वळ रे गेलो फरे है, म्हांपणा शूं मन बणे है।

---

(१) प्र०—हे भगवन! जब चित्त के शुभाशुभ (भलेबुरे) के निमित्त के अनुसार ही से प्रकृति का प्रवाह (तबदीली) होने लगता है, तो ये चित्त ही पृथक् पृथक् किस निमित्त से होते हैं, अर्थात् इन चित्त रूपों में जो प्रकृति बहने लगी इसका क्या कारण है। अर्थात् शरीर इन्द्रियें चित्त के कारण से बनती हैं, तो चित्त किस कारण से बनते हैं।

उ०—सिर्फ अहं (मैं) मात्र से ही चित्त बनते हैं, जो कि पहले संयोग के नाम से कहा गया है अर्थात् प्रकृति पुरुष (जड़ चेतन) के संयोग से ही पृथक् पृथक् चित्त बनते हैं और यह संयोग अविद्या से बनता है और अविद्या विपरीत वृत्ति से बनती है विपरीत वृत्ति प्रकृति के रजो-

उ०—हे सौम्य ! हर एक तबदीली के साथ चित्त वह एक ही रहता है और उस एक ही चित्त से अनेकों शरीर इन्द्रियों मे अनेक चित्त काम किया करते है, जैसे हमारे बाल यौवन और जरा मे तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति मे एक ही चित्त से अनेक चित्तों से काम लिया है । यो ही अन्य देहों मे भी समझना ।

नोट—देहिनोस्मिन यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्ति र्धीर,स्तत्र न मुह्यति ॥२॥१३॥
प्रवृत्ति, ग्रामवृत्ति अर्थात समष्टि चित्त की व्यष्टि ही प्रवृत्ति और उसकी प्रवृत्ति वृत्ति कहाती है ।

सू०—तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥६॥

२—ध्यानज (ऊँचा विचार से) बल वाला मन में कर्म मैला (गन्दा) नहीं होते हैं ।

(५) प्र०—हे भगवन ! इन अनेक देहान्तरों में जो एक ही मुख्य चित्त काम लेता है, वह मुख्य चित्त भी एक ही तरह का होता है या मुख्यचित्त भी तरह तरह के होते हैं अर्थात निर्माण चित्त सब एक से ही होते हैं या इन में कुछ भेद होता है ?

वासना वाले (कर्म सहित) ही हैं अर्थात् ध्यान युक्त चित्त ही कर्म बंध से मुक्त है (जिस में अस्मिता नहीं है) बाकी सब चित्त कर्म बंधवाले ही हैं। जैसे—

'यस्य नाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥' श्रीगीता

सू०—कर्माऽशुक्लाऽकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥७॥

[illegible]—उजळो काळो ने [illegible] तीन [illegible] कर्म [illegible] होय छे पण ध्यान [illegible] उत्पन्न [illegible] चित्त ना कर्म [illegible] छे।

(७) प्र०—हे भगवन्! कर्म कितने प्रकार का है कि जिस [illegible] वासना वाला चित्त कर्म बंधवाला कहाता है [illegible] उनसे रहित चित्त (ध्यानज) मुक्त चित्त कहाता है? क्या योगी कोई कर्म नहीं करता है [illegible] चित्त कर्म बंध से मुक्त रहता है [illegible] धर्म [illegible] से [illegible] अनासक्त क्यों?

करता है। योगी के सिवाय और सब के कर्म या तो पाप के बुरे, या पुण्य के अच्छे वा पाप पुण्य के अच्छे बुरे मिले होते हैं ।

"अनिष्टमिष्टमिश्रञ्च त्रिविधं कर्मण. फलम्
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्
नैव किंचित्करोमीति युक्त मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् नश्नन् गच्छन्स्वपन्श्वसन्
—श्रीगिता जी

सू०—ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥८॥

२—जैसा कर्म वैसा ही विचार है ॥

प्र० हे भगवन्! योगी का अज्ञान (अविद्या) मिट जाने से उसमें किसी प्रकार के कर्मों का संबंध नहीं रहता है परन्तु जिनका कर्मों से लगाव है अथवा योगी नहीं है उनके अच्छे, बुरे कर्मों में क्या होता है? प्रत्येक कर्म को [illegible] कर अप्रत्यक्ष आशय क्यों माने ?

उ० सौम्य! जैसे कर्म होते हैं वैसे ही चित्त के भीतर संस्कार (उनकी वासनाएं इच्छाएं) संग्रह होती रहती हैं (इकट्ठी होती रहती हैं।) वे ही इच्छाएं अनेक प्रकार की होने से अनेक प्रकार के जन्मों में अपने अनुसार ही कर्म और भोग कराती हैं। ये ही वासनायें

से जन्म कर्म और जन्म कर्म से [illegible] यों यह अज्ञानचक्र चलता ही रहता है ॥

सू०—जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं-स्मृतिसंस्कारयो रेकरूपत्वात् ॥९॥

२—चाहे जहाँ जगह, चाहे जहाँ जन्म (योनि) में, चाहे जहाँ [illegible] वक्त में या विचार में कर्मों की सफल जुड़ी होती है ।

---

(५) प्र०—कर्मों के संस्कार और संस्कार (स्मृति) से कर्म [illegible] में प्रत्यक्ष में कर्म का कारण कोई संस्कार नहीं [illegible] है तब संस्कार बिना ही कर्म होते हैं यह मानने में क्या हर्ज है अर्थात आशय नहीं अभिव्यक्ति [illegible] क्योंकि कर्म और आशय एक के उपरान्त [illegible] साथ ही जुड़ा हुआ नहीं दीखता ।

सू०—तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥१०॥

र—ठेठ शूँ ही या विचार कर्मा रो शाँकल गोळमटोळ है। क्यूंके सुख री चावना ठेठ शूँ ही है, ने ई शूँ ही विचार कर्म री शाकल है।

---

(१) प्र०—तब संस्कार स्मृति (इच्छा) किससे होती है? क्योंकि कर्म इच्छा से होते हैं, तो इच्छा किससे होती है अर्थात आशय बिना कर्म नहीं, तो आशय किससे अर्थात आशय से कर्म होते हैं तो आशय किससे होते हैं?

उ०—इच्छा (संस्कार) अनादि है अर्थात इच्छा का आदि कारण कोई नहीं है। क्योंकि सुख में प्रवृत्ति और दुख से निवृत्ति जीव मात्र में जन्म से ही होती है।

सू०—हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥११॥

उ०—यद्यपि वासना अनादि है तो भी अनंत नहीं है। क्योंकि वासना का संग्रह हेतु, फल, आश्रय आलंबन से ही होता है। अर्थात् इन चारों के आधार पर ही वासना (इच्छा) की स्थिति है, जब ये ही मिट जायें, तो निराधार वासना नहीं रह सकती है। हेतु (अविद्या) फल (भोग मोक्ष) आश्रय (व्यष्टि मन, अज्ञान युक्त चित्त) आलंबन (विषय को कहते हैं इन में मुख्य चाहना वासना है अर्थात् हेतु आदि मिटने से मिटे।

सू०—अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदा-द्धर्माणाम् ॥१२॥

नो०—इच्छा थी या विचार थी वासना मिट जाय ए वात नथी। पण ए विसट जाय छे, अर्थात् ए बांधवा थी स्वभाव छूट जाय छे।

---

(१) प्र०—तो क्या इन चारों हेतु आदि का नाश (अभाव) हो जाता है या रूपान्तर होता है कि जिससे वासना का नाश होता है अर्थात् तब क्या हेतु आदि मिट जाते हैं (नित्य प०ा मिटे। ?

सू०—ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥१३॥

टी०—हेतु आदि, वे भी हेतु आदि ई सब ही चीजाँ एक होज चीज में है, यूँ समझणो ही यारो गो मिमटणो है।

(प्र) प्र०—हे भगवान! वासना के कारण, हेतु (अविद्या) आदि का होना ही अनर्थ का मूल है, फिर उनका नाश भी नहीं होता, रूपान्तर ही होता है, यह भी आप कहते हैं तो फिर वासना जाने कैसे हो सकती है अर्थात् वासना कैसे मिटे?

उ०—हे शिष्य! प्रकृति ही अविनाशी कही गई है, वही प्रकृति अपने व्यक्त रूप से हानि पाकर भी है, प्रकृति ही। इसलिये त्रिगुण से अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है और यों प्रकृति-मय ही सब समझ लेने से अविद्या आदि होकर भी अनर्थकारी नहीं होते अर्थात् ये हेतु आदि गुण भी हैं प्रकृति ही है, यों जानना चाहिये।

सू०—परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥१४॥

ही सब है, यह बात कैसे समझ में आसकती है अर्थात् अनेक कैसे ?

उ० सब शरीर में प्रकृति के स्वरूप का ही पाते हैं। आदि में भी प्रकृति ही के स्वरूप में थे वर्तमान में भी उसी रूप हैं, ज्यों मृत्तिका ही प्रथम और अन्त में भी मृत्तिका ही होने से वर्तमान में भी घट मृत्तिका ही है। इससे एक ही वस्तु है अनेक नहीं।

०—वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विविक्तः पंथाः॥१५॥

[illegible]—एक ही चीज होना भी मन का न्यारापना [illegible] [illegible] है (ज्यूं—'ओगळया मैं गाळो धरि [illegible] पर यसा [illegible] [illegible] घरर दसर)।

[illegible] —जो सब एक ही वस्तु प्रकृति ही है [illegible] क्यों दीखती है ?

सू०—न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥१६॥

२—वा एक चीज मन री वणाई थकी नी' है, क्यूँके मन नी रे' तो भी वातो रे' हीज।

---

(५) प्र०—तब तो जो हमारा चित्त है, वही वस्तु है, अर्थात् चित्त ही वस्तु है, यही मान लेने मे क्या दोष है। तब अनेक चित्त क्यो माने अर्थात् निर्माण चित्त (अनेक चित्त-क्यो माने) अथवा चित्त ही वस्तु क्यो न माने ?

उ०—हमारा चित्त ही वस्तु नहीं हो सकती। क्योंकि किसी वस्तु को हम देखना छोड, अन्य वस्तु को देखने लग जायँ, तब क्या वहाँ वस्तु कुछ भी नहीं होती है ?

सू०—तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तुज्ञाता-ज्ञातम् ॥१७॥

२—अणी रो चलको मन पे पड़वा शूं मन मे दीखणो, ने नी दीखणो व्हे' है।

---

(५) प्र०—तब वस्तु कभी मालूम होती है और कभी वह क्यों नहीं दीखती अर्थात् तब निर्माण चित्त मानने मे क्या आवश्यकता है ?

उ० वस्तु का प्रतिबिम्ब पडने से वस्तु चित्त मे ज्ञात कही जाती है और चित्त मे वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पडने से अज्ञात कही जाती है अर्थात निर्माण चित्त से ही वस्तु ज्ञात अज्ञात है।

सू०—सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥१८॥

भा०—मन ने देखवा वाळा ने मन रो देखणो, ने नी देखणो [illegible] सदा ही मालम है। क्यूँके आणी देखवा वाळा मे कधी हेरफेर ना [illegible] है।

---

(५) प्र०—तब ता जानना नहीं जानना चित्त ही का धर्म हुआ ?

उ०—ये जानना और न जानना जो चित्त की वृत्तियें हैं, ये पुरुष से ही जानी जाती हैं, यद्यपि अन्य विषयों का प्रभु चित्त है, तथापि उसके जानने न जानने को भी सदा पुरुष [illegible] जानता ही रहता है।

सू०—न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥१९॥

उ०—यह चित्त स्वय ही दीखने वाला है, तो फिर यह कैसे देख सकता है ।



सू०—एकसमये चोभयानवधारणम् ॥२०॥

२—एक शूँ देखवारो ने दीखवारो दो ही काम लारे नी व्हे' शके ।

---

(५) प्र०—देखना और दीखना दोनो ही काम यही एक ही चित्त कर लेगा ?

उ०—एक साथ दो काम एक से नहीं हो सकते, दीखने वाला, देखने वाला नहीं हो सकता और देखने वाला दीखने वाला नहीं हो सकता (चित्त दीखता है तो देखता नहीं और देखता है तो दीखता नहीं है) ।



सू०—चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसंगः स्मृति सङ्करश्च ॥२१॥

२—मनने देखवावाळो फेर दूसरो मन मानां, तो या लमटर पूरी नी व्हे' ने याद भी नी रे' ।

---

(५) प्र०—तब एक दूसरा चित्त उस चित्त को देखने वाला मान लेने मे क्या दोष है ? पुरुष ही मानने मे क्या लाभ ?

उ०—एक चित्त को दूसरा चित्त देखने वाला और फिर वह भी दीखता है, इसलिये उसको भी देखने वाला और यों और और करने से कहीं ठिकाना न रहेगा और जब देखने वाला ही कायम न होगा तो स्मृति कहाँ ठहरेगी अर्थात् स्मृति भी न रह सकेगी। क्योंकि स्मृति किसी स्थायी के आधार पर रहती है अर्थात् एक चित्त नष्ट वैसे हो जितने कल्पे जायँ सब ही नष्ट हों [illegible]। तब इतनी कल्पना व्यर्थ क्यों करनी और जब इसकी ही निश्चय न हुई, तो कल्पना करने वाला कौन होगा इसका भी पता न चलेगा।

सू०—चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्व-बुद्धिसंवेदनम् ॥२२॥

भा०—मन देखनेवाला तो स्वभाव से [illegible] पण है पण देखनेवाला तो स्वभाव [illegible] [illegible] ही तो।

(४) प्र०—तो क्या देखना, सुनना समझना आदि पुरुष ही करता है या चित्त ही करता है?

उ०—तब ज्ञान चित्त की तरफ झुकता जाता है और वह
मुक्त केवल रूप होता जाता है ।

सू०—तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२७॥

२—यूँ चित्त में पे'ली री वार्ताँ भी वच्चे वच्चे याद आय जाय ।

---

(५) प्र०—यो चित्त के आत्म ज्ञान की तरफ़ झुकने से और
निर्मल होने से क्या उसे अन्य कुछ भी ज्ञान नहीं
रहना है ?

उ०—पहले सस्कारो के कारण से बीच बीच मे चित्त मे अन्य
याद आया करते हैं, जिनसे योगी व्यवहार भी करता
रहता है ।

सू०—हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥२८॥

२—पण वी तो अणी साँची समझ रे आगे ठे'र नी शके ।
अनरा विचार गी नाईं ई भी साँची समझ शूँ हीज मिट जाय ।

---

(५) प्र०—इन संस्कारों को भी रोकने का क्या उपाय है अर्थात
संस्कारो की अत्यन्त निवृत्ति कैसे होती है ?

उ०—जैसे क्लेशों का नाश कहा था, वैसे ही इन संस्कारों
का भी नाश होता है अर्थात् ध्यान से नाश किये
जाते हैं ।

सू०—प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथाविवेक-ख्यातेर्धर्म मेघः समाधिः ॥२६॥

भा०—जदी अणी साँची समझ में भी मोह मिट जाय जदी गो वधे दूसरा विचार रो आवणो बिलकुल रुक जाय, ने केवल साँची समझ रा विचार होज रे' जाय।

---

(५) प्र० – तब तो सत्य ही सब संस्कारों को मिटाने के लिये ध्यान धरा रखना चाहिये ?

उ०—ज्ञान में भी इच्छा मिट जाने से 'धर्ममेघ' नाम की समाधि होती है, इसमें सत्य ज्ञान ही सदा ... है यही उत्कृष्ट अविप्लवा विवेक ख्याति कहाती है।

सू०—ततः क्लेशकर्म निवृत्तिः ॥३०॥

भा०—जदी दुःख रा विचार (धर्म) बिलकुल मिट जाय है।

(६) प्र० इस प्रकार धर्ममेघ समाधि से फिर क्या होता है ?

उ० धर्ममेघ समाधि के बाद क्लेश और कर्म ... निवृत्त होजाते हैं।

सू०—तदासर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानंत्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥३१॥

२—पछे अणी साँची समझ रे रोकवावाळो कोई विचार नी रे'वा शूँ ईं रे जाणवो बाकी नी रेवे, केवल अपार सुख ही सुख रे' जाय है ।

(५ प्र०—फिर उसके चित्त की क्या दशा होती है ?

उ०—तब क्लेश कर्मों के आवरण से रहित ज्ञान (चित्त) अनन्त हो जाने से सब ही ब्रह्माण्ड तुच्छ अल्प ना कुछ होजाता है अर्थात निर्माण चित्त अपने असली चित्त मे मिल कर अनंत हो जाता है ।

सू०—ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥३२॥

२—अब कोई काम बाकी नी रे'वा शूँ हेर फेर व्हे'णो मिट जाय है ।

(६ प्र०—फिर क्या होता है ?

उ०—तब गुणों का कार्य समाप्त हो जाने से गुणों का तबदीली होना मिट जाता है अर्थात एक ही प्रकृति

ही प्रकृति रह जाती है अर्थात् गुणों का क्रम [illegible]
जाता है ॥

सू०—क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः
क्रमः ॥३३॥

२—फिर फेर एक नहीं [illegible]
ने या फिर फेर हरक चीज [illegible] नया जन्म [illegible]
जाय है ॥

(५) प्र० गुणों का क्रम क्या है ?

उ० समय का ज्ञान मिटे [illegible]
मिटना ही गुणों का क्रम मिटना है और [illegible]
ज्ञान और गुणों की तबदीली [illegible]

सू० पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं
स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥३४॥

उ० कृत कार्य होने से गुणों का फैलना मिटकर सिमट जाना अर्थात् सपूर्ण संसार एक प्रकृति मय होजाना ही मोक्ष है अथवा पुरुष का स्वरूपावस्थान वा चित्त-वृति निरोध कहाता है अथवा यही परमपद कहाता है॥

। समाप्तोयग्रन्थः ।



शुद्धिपत्र

पानारी	ओळमे	है	व्हे'णो चावे
२	१८	दिख	दिखे
	१९	दिखे	दिख
३	४	दूजो	दूजा
३	१०	आगळा	आगळी
४	१५	जवीमे	जगमें
५	१७	भी व्हे'	भी न व्हे'
५	२४	वां	गाजे
६	१३	निकळा	निकळ
६	१६	अर्णा ग	अर्णा गे
७	१८	आश्रय	आश्रम
९	४	मा	मां
९	१२	मन	मत
[illegible]	[illegible]	गूँ	गूँ
१०	[illegible]	सर्वीपिगाम्	सर्वेपिणाम्
	[illegible]	गानम्	गननन्
[illegible]	[illegible]	[illegible] नी	[illegible] नी
[illegible]	[illegible]	सवदा	सर्वदा
[illegible]	[illegible]	धम	धर्म
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

पानारी	ओळमे	है	व्हे'गो चावे
८	३	वाळा	वाळो
१०	१२	ठिकाण	ठिकाणे
११	५	ओर वी	ओर वा
११	११	अण ाजाएया	अणजाएया
१२	११	नामहीन	नामहीज
”	१३	प्रमाणे	प्रमाग
१४	१७	मे'म	भे'म
१७	१६	टूंट्यो रो	टूंट्यो रो १
१८	१९	मान	भान
१९	८	मरणो	मिटणो
२०	१५	स्पद	स्पंद
३३	१९	असंप्रज्ञाय	असंप्रज्ञात
३३	१९	थका	थकी
३३	२३	उह्लै	उल्ले
४२	४	मिटन	मिनट
४२	१९	प्राणि	प्रणि
४७	१७	(पुरुांपा)	पुरुषां
४९	१५	कलि	काले
५२	२	प्रश्यनी	परयंती
५४	१७	ओर	ओर
६०	१३	फई-न-नई	फई-न-कई
९८	१७	उवा	उवो
१०२	११	शाम्र	शान्न
१०३	४	छोटी	छेटी

पानांत	ओळमे	है	व्हेंणो चावे
१०३	७	आयो	आपो
१०४	१८	मर्वात्कृष्ट	सर्वोत्कृष्ट
१०६	९	तीर्णां	तीर्नां
१०९	५	कल	काल
१०९	२१	रना	करना
११०	१	ममाधि	स समाधि
१११	२०	तन्	तनु
११३	१९	ततु	तनु
११७	१३	तेवा	तैवा
१२५	१०	द ख	दु.ख
१२६	१२	पविश	प्रविश
१२६	१३	मे	के
१२७	६	द्रष्टा	द्रष्ट
१२८	१५	लिग	लिंङ्ग
१३०	११	नष्ट	नष्ट
१३२	१९	तद्विद्या	त विद्या
१३५	६	स्तान्तिदष्टा	स्तन्तिष्टा
१३५	४	समार्धीव	समाधाव
१३६	९	वा' रला	वा' रला
१३८	१	जाति	रति जाति
१३९	१५	पति	प्रति
१४१	८	ततर्म	सत्कर्म
१४२	११	तत्संबोध	ता मम्बोध
१४२	१२	दृट	दूट

पानारी	ओळमे	है	व्हे'णो चावे
१४४	१	शौचात् भाङ्ग	शौचाभाङ्ग
१४४	११	ग्ये	प्रये
१४५	५	त्तम	त्तम
१४५	१२	शुद्धित्तयात्	शुद्धित्तयात्
१४७	२	मनभा	समभा
१५०	७	चोथे	चोथो
१५०	१८	पानो	पानौ
१५२	१	मप्रथो	मम्प्रया
१५८	५	निर्मास	निर्भास
१६४	२	चिन्ता	चित्ता
१७१	१६	परिधामा	परिणामा
१७२	२३	भर्म	धर्म
१७७	८	मैत्रादि	मैत्र्यादि
१८०	१	व्यूहाद्ग	व्यूहद्या

प्रार्थना—

शीघ्रता मे शुद्धिपत्र पूरो नी वण शक्यो है, मा आगो अपराध गी क्षमा अवश्य मिलणो चाये ।

संपादक —